संस्थापक :
सिद्धयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्ध योग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 42 / अंक : 9
दिसम्बर 2009

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

नादत्ते कश्चित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ते अन्तवः।।

सर्व व्यापक परमात्मा न पाप ग्रहण करता है और न पुण्य। अतः जीवों का कर्मबन्धन केवल अज्ञानमात्र है, जिसके कारण सभी जीव अपने को मोहमाया में फँसा मानते हैं।।

◆ ◆ ◆

अनाचारस्तु मालिन्यमत्याचारस्तु मूर्खता।
विचाराचार संयोगः सदाचारस्य लक्षणम्।।

(बोधसागर)

अनाचार से मनुष्य के चित्त में मलिनता होती है और आवश्यकता से अधिक आचार करना मूर्खता (या दम्भ) कहा गया है। अतः विचारपूर्वक जो आचार किया जाता है, वही सदाचार कहलाता है।

◆ ◆ ◆

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

(श्वेताश्वेतरोपनिषद् 6/23)

जिसकी परमात्मा में उत्तम भक्ति है और परमात्मा के समान ही अपने गुरु में भक्ति है, उस महात्मा को सभी पदार्थ स्पष्ट हो जाते हैं।

◆ ◆ ◆

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जराः।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

(ब्रह्मखण्ड 16/51)

पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से ही दैन्य, दुःख तथा भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणांनाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष: 42 अंक : 9

हंसारूढा हरहसितहारेन्दुकुन्दावदाता,
वाणी मन्दस्मिततरमुखी मौलिबद्धेन्दुलेखा।
विद्यावीणामृतमयघटाक्षस्त्रजा दीप्तहस्ता,
श्वेताब्जस्था भवदभिमतप्राप्तये भारती स्यात्।।

जो हंस पर सवार है, बिल्ली के अट्टहास, हार, चन्दमा और कुन्द के समान उज्जवल वर्ण वाली है तथा वाणीस्वरूप है, जिसका मुख मन्द–मुस्कान से सुशोभित है और मस्तक चन्द्ररेखा से विभूषित है तथा जिसके हाथ पुस्तक, वीणा, अमृतमय घट और अक्षमाला से सुशोभित हो रहे हैं, जो श्वेत कमल पर आसीन है, वे सरस्वती देवी आप लोगों की अभीष्ट–सिद्धि करने वाली हों।

दिसम्बर, 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	गुरुभक्तों की गति –ब्र. गोपालानन्द जी महाराज	12
4.	गुरु आशीर्वाद –डा. जे.पी. शर्मा	14
5.	संस्कृति पर घाँव न रख देना –श्रीमती सावित्री देवी चौरसिया	15
6.	सहारनपुर में शताब्दी समारोह की धूम –सजीव शर्मा	19
7.	गुरुदेव हमारे मन–मन्दिर –जगदीश राए बंसल	21
8.	ज्ञान–विज्ञान–योग –कृष्ण कुमार पाण्डेय	22
9.	असंयतात्मन योगो दुष्प्राय इति से मति –रामेश्वर खण्डेलवाल	25
10.	गुरु चन्द्रमोहन शताब्दी उत्सव –मोती राम गर्ग	27
11.	कामख्या की यात्रा में सत्संग लाभ –डा. विजय सिंह	29
12.	नाम–जप महिमा –डा. जे.पी. शर्मा	33
13.	श्री सिद्धयोग मण्डल दतिया का जन्मशताब्दी समारोह व योग शिविर सम्पन्न	39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सार्वभौम विद्या योग

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

''योग'' आध्यात्म विद्या है। मानव मात्र इसका अधिकारी है। यह एक दूसरी बात है कि कोई व्यक्ति योग की परिभाषा न समझकर इसको अपने मन में साम्प्रदायिकता का स्थान देता रहे। सांप्रदायिक लोग 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार अपने मनोनीत नियमों का संकलन करके अपने सम्प्रदाय को चलाते हैं। उनके सभी नियम सभी को प्रिय नहीं होते। हमारी योग विद्या एक इस प्रकार की विद्या है जिसमें ज्ञान और विज्ञान के स्वरूप को समझाकर मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाया गया है।

भगवान पतंजलि देव ने 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' कह करके अपने पतंजलि योग दर्शन में योग की परिभाषा बतलाई है। चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ है – चित्त की समस्त वृत्तियों का नितरां रोध अर्थात् सीमा तक पहुँची हुई चित्तवृत्तियों का बिल्कुल ही रुक जाना। चित्तवृत्तियाँ त्रिगुणात्मिका होती हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण – ये तीनों प्रकृति सम्भव गुण हैं। ये तीनों ही गुण योगी के चित्त को मलिन रखा करते हैं। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान रहता है, उस समय रजोगुण और तमोगुण उसके अनुयायी रहा करते हैं। ऐसा सतोगुण प्रधान चित्त आत्मस्वरूप आध्यात्म ऐश्वर्य में प्रेम करने वाला होता है। और इसके विपरीत रज और तम प्रधान चित्त अवैराग्य, अनैश्वर्य, अन्धकार एवं आलस्य की ओर बढ़ाने वाला होता है।

योगी अपने चित्त की त्रिगुण प्रवृत्तियों को हटाकर चित्तवृत्तियों का निरोध करता है एवं अपने आप को केवली भाव की ओर ले जाता है। कैवल्य लाभ करना ही योगियों का परम लक्ष्य है। यह लक्ष्य भूमण्डल पर जन्म लेने वाले हर मानव का हो सकता है। इसका किसी के मजहब या सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं। आवश्यकता तो इस बात की है कि साधक मननशील मनुष्य हो। यह विचारने की आवश्यकता नहीं कि उसका जन्म कहाँ हुआ है? वह किन मन्तव्यों को मानने वाला है? भले ही वह यहूदी हो, फारसी हो, हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हो। मननशील मानव योग का अधिकारी है। यदि उसके मन में योग की सच्ची जिज्ञासा पैदा हो गयी है तो वह योगोपदेष्टा योग्य सच्चे आचार्य गुरु की शरण लेकर इस विद्या में प्रवेश ले सकता है तथा प्रवेश कर लेने के बाद दृढ़तर अभ्यास में लगे रहने वाला व्यक्ति योग की पराकाष्ठा को अवश्य ही पा जाता है। अखिलात्मा योग–योगेश्वर श्री कृष्ण ने अपनी

श्रीमद्भगवद्गीता में छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार बतलाया है –

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

अर्थात्–युक्त योगी कहलाता ही वह है जो ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा होकर विकार रहित स्थिति को पहुँच गया हो। जिसकी दृष्टि में लोहा, सोना, मिट्टी, पत्थर समान रूप से ही दिखाई देते हों, किन्तु यह स्थिति प्राप्त उसी को हो सकती है जिसने योग का क्रमशः अध्ययन किया हो। योग की वर्णाक्षरी, मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है, मन सब शक्तियों का भण्डार है।

इन्द्रियाँ उसको अपने–अपने विभिन्न विषयों में प्रतिक्षण प्रेरित करती रहती हैं। अतः वह इन्द्रियों के विषय रूप, रस, गन्धादि में भटकता रहता है। योगी का सबसे पहला लक्ष्य है कि रूप, रस गन्धादि में भटकने वाले अपने मन को प्रत्याहार के द्वारा लौटा–लौटाकर धारणा के द्वारा एकाग्र करे। किसी एक लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना ही धारणा कहलाती है। यह योगी की पहली वर्णाक्षरी है, जिसका अध्ययन करने वाला साधक धारणा–ध्यान समाधि का अध्ययन करता हुआ संयम तक पहुँच जाता है, एवं संयमित चित्त वाला योगी ही ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो सकता है। ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा के अर्थ को हर व्यक्ति सम्भवतः नहीं समझता होगा। अतः थोड़ा सा स्पष्ट कर देना आवश्यक है। ज्ञान–विज्ञानतृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझकर उस पर पूर्णाधिकार प्राप्त करना। जैसे जल में न डूबना, अग्नि से न जलाया जाना, पाताल प्रवेश करना, आकाश गमन करना। ये सब कार्य प्रकृति के नियमों को समझकर उस पर विजय प्राप्त कर लेने वाली बात है। जो साधक अपनी साधना के बल से प्रकृति के इस प्रकार के सभी नियमों को समझकर उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वह ज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने संयम को उत्कृष्ट बनाकर आत्म साक्षात्कार कर लेता है एवं प्रातिभ, श्रवण, वेदना, आदर्श आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। ज्यों–ज्यों साधक आत्म–साक्षात्कार के निकट पहुँचता है, त्यों–त्यों उसके मन में अपने आप ही प्रातिभ ज्ञान का उदय हो जाया करता है। जिस प्रकार प्रातःकालीन ऊषा में हर व्यक्ति को धुंधले–धुंधले प्रकाश में सब मकान आदि दिखलाई देने लगते हैं, उसी प्रकार योगी की बुद्धि में सभी सूक्ष्म–भाव शुद्ध सत्य के रूप में आभासित होने लग जाते हैं। यही उसका प्रातिभ ज्ञान है। प्रातिभ ज्ञान के साथ–साथ दूर–दूर की बातें सुनना, दूर–दूर की वस्तुओं को स्पर्श करना आदि–आदि शक्तियाँ भी योगी के अन्दर स्वाभाविक रूप से उदित हो जाती हैं। इन सब शक्तियों के उदय हो जाने के बाद योगी का मन अपने आप ही आत्मलीन रहने लगता है। वह कूटस्थ हो जाता है। उसकी बुद्धिवृत्ति आत्माकार बनी रहने लगती है। अतः किसी भी विकार का उसके मन में उदय नहीं होता। इस प्रकार की स्थिति में स्थित रहने वाले योगी की दृष्टि में लोहा, सोना, पत्थर सब समभाव से रहने लगते हैं। वह वासना, तृष्णा के जाल से बिलकुल ही दूर हो जाता है। प्राणिमात्र को अपनी आत्मा समझता

है एवं अपने आपको भी प्राणिमात्र के अन्दर आत्मवेग देता है, यही उसकी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई योग स्थिति है। उसकी दृष्टि में वर्णभेद और जातिभेद सब मिट जाते हैं।

अतः योग–विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिसको सार्वभौम विद्या कहा जा सकता है, क्योंकि पृथ्वी पर जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति अपने अधिकार भेद से इसके अधिकारी हैं। हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अधिकार–भेद को अवश्य माना है। अधिकार भेद का अर्थ किसी जाति–पाँति से सम्बन्ध नहीं रखता, प्रत्युत योग्यता से सम्बन्ध रखता है। जैसे पहली कक्षा में पढ़ने वाला विद्यार्थी उसे उत्तीर्ण करके ही दूसरी कक्षा का अधिकारी बनता है न कि एम.ए., आचार्य आदि का। हाँ! शनैः शनैः पढ़ता हुआ पहली, दूसरी, तीसरी आदि कक्षाओं को क्रमशः उत्तीर्ण करता हुआ अन्त में वह एम.ए. व आचार्य पद तक पहुँच ही जायेगा और कुछ समय के बाद क्रमशः अध्ययन करता हुआ वह उच्चकोटि का विद्वान कहलाने लगेगा। इसी प्रकार से योग–विद्या का विद्यार्थी भी शनैः शनैः क्रमशः अध्ययन करता हुआ अपने परम लक्ष्य तक अवश्य ही पहुँच जायेगा, किन्तु यह देखना आवश्यक होगा कि कौन व्यक्ति किस भूमिका का है। हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग एवं लययोग किस रास्ते पर चलने से किसका जल्दी से अधिक उत्थान हो सकता है, इस बात को उसके शिक्षक ही समझेंगे और वे अपने छात्र को जिस मार्ग से चलाना चाहेंगे चलायेंगे एवं उसको बढ़ायेंगे।

"अशुभ विचारों को निकाल कर शुभ विचारों को लाना है तो अशुभ को निकालने की बात न सोचकर शुभ का चिन्तन आरम्भ कर दो। जगत् के, प्रपंचों के और संसार के पापों एवं बुराइयों के बदले भगवान् की मंगलमयता, कल्याण-स्वरूपता, दयालुता, प्रेम, भक्तवत्सलता, महत्ता, सत्यस्वरूपता, शान्तिमयता, आनन्दमयता, निष्कामता, परिपूर्णता, सर्वहितैषिता, समता आदि महान् दिव्य गुणों का स्मरण करने लगो। भगवान् के तत्व–रहस्य का मनन तथा विचार आरम्भ कर दो। उनकी मधुर मनोहर लीला–कथाओं का श्रवण, गायन, चिन्तन करने लगो। उनके अतुलनीय माधुरी से परिपूर्ण परम सुन्दर सुधावर्षी मुनिमनमोहक स्वरूप के ध्यान का अभ्यास आरम्भ कर दो, फिर अशुभ विचार अपने–आप ही नष्ट हो जायेंगे।"

योग साधना एवं सिद्धियाँ

योग साधना में सिद्धि शब्द अत्यन्त व्यापक है। इसकी व्यापकता के कारण ही विभिन्न रुचि एवं मत वाले व्यक्तियों के अनुसार इसके अर्थ में भी भिन्नता आ जाती है। वैसे तो सिद्धि शब्द का शाब्दिक अर्थ है किसी कार्य की पूर्णता को पा लेना। मनुष्य की असंख्य कामनायें हैं और उनकी पूर्ति के लिए ही वह अहर्निश लगा रहता है। इच्छाओं की पूर्णता के लिए वह अनेक प्रकार के वैदिक अनुष्ठान करता है व्रत एवं उपासनाओं में लगा रहता है तान्त्रिक अनुष्ठानों का अवलम्ब लेता है। अपने पुरुषार्थ संयम एवं महापुरुषों की कृपा के अनुपात से उसे सिद्धि भी मिला करती है। यहाँ पर हम अन्य सिद्धियों की बात न कहकर केवल योग साधना से प्राप्तव्या सिद्धियों पर ही चर्चा करेंगे।

योग शास्त्र में सिद्धि शब्द के पर्याय के रूप में विभूति, ऐश्वर्य, आत्मबल, मानसिक शक्ति आदि–आदि शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। योग में जो सिद्धियाँ आती है उन सब का आधार पूर्णतया मन की एकाग्रता ही है। वैदिक वाङमय एवं पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है कि ईश्वर अपने संकल्प से ही सृष्टि की रचना करते हैं। इस बात से यह सिद्धान्त प्रमाणित हो जाता है कि उस परम चेतना अंशी का अंशरूप मानव में भी यह सामर्थ्य विद्यमान है। योगियों ने इसी सिद्धान्त को समझकर ही मानव मन को समस्त शक्तियों का केन्द्र माना है। जीवों के मानस शक्ति के विभिन्नता के कारण ही विभिन्न शरीर एवं लोकों का निर्माण हुआ है। शरीरों से ही मानसिक शक्ति की अभिव्यक्ति हुआ करती है।

असंख्य ब्रह्माण्ड एवं अनन्त लोक हैं। इनमें रहने वाले जीवों [illegible] क्षमता, व्यवहार एवं जीवन दूसरे लोक के जीवों से भिन्न है। किंतु हमारे इस पृथ्वी लोक की एक विशेषता यह है कि इसमें सभी लोकों के जीव के सदृश गुण, स्वभाव एवं शक्ति वाले मानव रहा करते हैं। हमारे पूज्यपाद गुरुदेव महाराज कहा करते थे कि पृथ्वी लोक परचून की दुकान की तरह है यहाँ थोड़ी–थोड़ी वे सभी वस्तुएँ मिल जाती हैं जिनके लिए एक–एक अलग लोक की व्यवस्था बनी हुई है। दूसरे सामान्य शब्दों में कहा जाये तो कह सकते हैं कि यहाँ पर स्वर्ग, नरक आदि समस्त लोक विद्यमान हैं। इसी कारण से हमारे इस मर्त्य लोक में कीट पतंगे जैसे सामान्य जीव से लेकर सर्वसमर्थ योगी एवं अवतार वास किया करते हैं। वस्तुतः सृष्टि वैचित्र्य ही ईश्वर का सबसे बड़ा चमत्कार है। मानव जीवन भी इसी चमत्कार का एक अभिन्न अंग है। हम लोग अपने जीवन से इतने आत्मसात् हो चुके होते हैं कि हमें अपना जीवन आश्चर्यजनक नहीं लगता। यदि सामान्य मनुष्य को सशरीर पृथ्वी से इतर उच्च लोकों में ले जाया जाये तो

वहाँ रहने वाले जीवों के शरीर, जीवन एवं सामर्थ्य–ऐश्वर्य को देखकर वह बहुत आश्चर्य में पड़ जायेगा। इसी तरह से मनुष्य लोक में ही यदि चींटी जैसे क्षुद्र जीव को मनुष्य जीवन के वैभव व क्षमता का ज्ञान हो जाये तो उसके लिए यह बहुत ही आश्चर्य की बात होगी।

सृष्टि वैचित्र्य का एक मूल कारण चेतना के विकास की भिन्नता ही है। जीवों के ज्ञान एवं क्षमता के आधार पर ही उनकी संकल्प शक्ति में भी अन्तर आ जाता है। एक कीट से लेकर ब्रह्म पर्यन्त आत्मतत्व एक होने पर भी चेतना भेद से उनको मनस्तर एवं अन्तःकरण में अन्तर है। हमारे मानव जगत में भी सबकी शारीरिक संरचना एक जैसी होने पर भी व्यक्तियों के चिन्तन शक्ति मानसिक क्षमता एवं संकल्प शक्ति में अन्तर रहता है। नारकीय लोकों से आये हुए प्राणी मानव रूप में होते हुए भी अत्यन्त कटु भाषी अविनीत, दुष्टों का संग वाले तथा पर पीड़ा में प्रसन्न रहने वाले एवं अनात्म वस्तुओं से प्रीति करने वाले होते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संकल्प शक्ति फलवती नहीं हुआ करती है। इसके विपरीत जो उच्च स्तर के सात्विक लोकों से आये हुए देवता तथा पूर्वजन्म के योगाभ्यासी भी मनुष्य के रूप में होते हैं। किंतु उनकी मानसिक क्षमता एवं संकल्प शक्ति साधारण मनुष्य से उच्चस्तरीय होती है। स्वर्गादि लोकों में रहने वाले देवताओं का सारा कार्य संकल्प से ही चलता है। इच्छा मात्र से सांसारिक भोग एवं विषयों को प्राप्त कर लिया करते हैं। किंतु मर्त्यलोक में मानव को पुण्य एवं पुरुषार्थ से ही भोगों की प्राप्ति हुआ करती है। यह तो रही देवताओं की बात किंतु उसमें यह सामर्थ्य प्रायः तभी तक होती है जब तक वे उस लोक में निवास करते हैं अथवा उस देवयोनि में रह रहे हैं। उस शरीर अथवा लोक के छूट जाने पर उस सामर्थ्य का सब में बना रहना आवश्यक नहीं। योगियों के सामर्थ्य एवं संकल्प शक्ति की कोई सीमा नहीं। योगी मनुष्य लोक में रहता हुआ भी देवताओं की श्रेणी से बहुत आगे होता है। सम्पूर्ण प्रकृति पर योगी का अधिकार होने के कारण अपनी इच्छा मात्र से सृष्टि निर्माण–संहार आदि में सक्षम होता है। विश्वामित्र ऋषि ने अपने तप एवं संकल्प के बल से नव सृष्टि का निर्माण किया यह सर्वविदित है। योग दर्शन के विभूति पाद में योगी के योगैश्वर्य का विस्तार से वर्णन किया गया है।

योग साधना का अधिकारी मनुष्य मात्र है और इस साधना का उद्देश्य है जड़ एवं चेतन के सम्पूर्ण भेद का पूरा–पूरा ज्ञान प्राप्त कर अपने को मुक्त व स्वच्छ बना लेना। मानव योगी बनने की इच्छा करता है। अपने प्राक्तन संस्कार, संसर्ग व वातावरण के भेद से मुमुक्षु साधकों की इच्छायें अनेकधा बँटी हुई होती हैं। कोई–कोई संस्कार दशात् सीधे आत्मतत्व की पकड़ में ही लगा रहता है उसे ही अपनी साधना का मुख्य लक्ष्य व केन्द्र बिन्दु मानता है। ऐसे साधक, **'मनुष्याणाँ सहस्त्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये'** के अनुसार बहुत कम होते हैं। दूसरी श्रेणी के साधक वे होते हैं जो मुमुक्षु तो अवश्य होते हैं किंतु संस्कारों की दुर्बलता से अथवा कामनाओं के वशीभूत हो जाने पर साधना जन्य अलौकिक लाभ के फलश्रुति से अभिभूत होकर आत्म दर्शन के प्रधान कर्म को गौण बना लेते हैं और सिद्धियों की प्राप्ति मान ऐश्वर्य

वैभव आदि को सर्वाधिक महत्व देकर उसे मुख्य कार्य समझ कर कर्म में प्रवृत्त होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का उद्देश्य समाज में अपनी शक्ति, ऐश्वर्य एवं कीर्ति को प्रकाशित करना मात्र रह जाता है। ऐसे साधक मन की एकाग्रता को पाने वाले होकर योग भ्रष्ट कहलाते हैं पुनः शरीर ग्रहण कर साधना में प्रवृत्त होते हैं ऐसे साधनों में एकाग्रजन्य पुण्य के प्रभाव से विशिष्ट मानसिक शक्तियाँ जन्मजात होती हैं। पुनः **'लभते च पौर्वदेहिकम्'** इस भगवद् वचन के अनुसार पूर्वजन्म की सारी यौगिक कमाई उसे मिल जाती है। पुनः योग की भूमिकाओं की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो जाता है।

गीता में भगवान ने मनुष्यों की रुचि एवं संस्कार के अनुसार ही उनकी साधना भेद का वर्णन किया है। शुद्ध सात्विक संस्कार वाले लोग देवताओं का भजन पूजन करते हैं और फलस्वरूप इन्हीं के लोकों में जाते हैं। पितरों को पूजने वाले पितर लोक को तथा भूत पिशाच की उपासना करने वाले देहपात के बाद उन्हीं योनियों को प्राप्त होते हैं। भगवान के भक्त योगी भगवान को ही प्राप्त करते हैं। मनुष्य जिस-जिस श्रेणी के उपास्य की उपासना करता है तज्जन्य संस्कारों से भावित होकर **'यं यं वापि स्मरन्भावम्'** के अनुसार उन्हीं के समुदाय अथवा लोकों को प्राप्त होता है। भूत-पिशाच आदि के शरीर पृथ्वी तत्व एवं जल तत्व रहित होने के कारण उनका शरीर सूक्ष्म है, अतः साधारण मानव जिन कार्यों को नहीं कर सकता वे सहज में ही कर दिखाते हैं। मनुष्यों में कुछ लोग उनकी उपासना करके चमत्कारी महात्मा कहलाये जाते हैं किंतु अन्ततोगत्वा उनका अधः पतन ही होता है।

श्रुति में **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** का उद्घोष है। इस का अर्थ यह है कि बलहीन व्यक्ति आत्मदर्शन का अधिकारी नहीं होता। परंतु यह बल क्या शारीरिक बल है अथवा धन, विद्यादि बल? यह बल मानसिक बल ही है। विभूतिवान योगी ही बलयुक्त कहा जा सकता है। विभूतियों के अनुभव कर लेने पर योगी को मुक्ति पर्यन्त सभी सूक्ष्म वस्तुओं में भी विश्वास हो जाता है। इसीलिए व्यास देव जी अपने भाष्य में लिखते हैं कि योगी को किसी प्रकार एक योग भूमिका का साक्षात्कार कर लेना चाहिए तभी उसकी योग एवं मुक्ति की निष्ठा बनती है। इससे साधना में दृढ़ता आती है। गीता में भी भगवान कहते हैं। **''एतां विभूतिं च योगं च मम यो वेत्ति तत्वतः''** जो मेरी विभूति एवं योगैश्वर्य को तत्व से जान लेता है उसी की योग में अविचला निष्ठा बनती है। जब तक हम परमात्मा की विभूतियों एवं कृपाओं का अनुभव नहीं कर लेंगे तब तक परमात्मा से दृढ़ सम्बन्ध जुड़ नहीं सकता। इसीलिए परमात्मा के ऐश्वर्य का अनुभव होना आवश्यक हो जाता है। आज भौतिक विज्ञान ने भी प्रकृति के सूक्ष्मता एवं नियमों को समझकर अद्भुत सारी उपलब्धियाँ मानव को दी हैं। योग विज्ञान एवं भौतिक विज्ञान दोनों का ही आधार प्रकृति ही है। योगी का मूल प्रकृति पर्यन्त अधिकार होता है जबकि भौतिक विज्ञानी पंच महाभूत एवं तन्मात्राओं को ही छू पाया है। प्रकृति के नियमों को समझकर आधुनिक विज्ञान ने

कई आविष्कार कर दिखाये है। जिस प्रकार से योगी शब्देन्द्रिय और आकाश के सम्बन्ध पर संयम करके दिव्य श्रवण एवं दूर श्रवण की सिद्धि को पा लेता है उसी प्रकृति के सिद्धान्त को समझकर यन्त्रों की सहायता से हम रेडियो द्वारा दूर श्रवण कर सकते है। इसी प्रकार से शब्द एवं विद्युत (प्रकाश) के रहस्यों को जानकर के हम दूर बैठे–बैठे ही दूर के शब्द एवं रूप दोनों को ही दूरदर्शन यन्त्र द्वारा देख सकते है। योगी अपने मन की एकाग्रता से दूर–दर्शन, दूर–श्रवण की योग्यता रखता है और दूसरे को भी इस का लाभ अधिकारी समझने पर दे सकता है। दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार यह जगत् अग्नि सोमात्मक है अर्थात् अग्नि एवं शीतलता का संयोग है। उसी प्रकाश एवं शीतलता (छाया) के कारण ही हम दूरदर्शन आदि यन्त्रों में रूप को देख सकने में समर्थ होते है। भौतिक विज्ञानी पूर्णतया यन्त्रों पर आधारित रहता है। जिस–जिस क्षमता का यन्त्र होता है उसी–उसी अनुपात से कार्यक्षमता एवं लाभ मानव को मिल पाता है। योगी की उपलब्धि यन्त्रों पर आधारित नहीं। वह अपने शरीर को ही यन्त्र बनाकर बाह्य प्रकृति से अपना सम्बन्ध स्थापित कर ज्ञान प्राप्त करता है एवं इच्छानुसार प्रकृति को बरतने में सक्षम रहता है। भूतजयी सिद्धयोगी के विषय में कहा गया है कि जिस प्रकार से नवप्रसूता गौ अपने बछड़े का अनुसरण करती है उसी प्रकार से पंच महाभूत एवं तन्मात्राये आदि, योगी की इच्छाओं का अनुगमन करती है। इसका तात्पर्य यह है कि, योगी के संकल्प में इतनी ताकत आ जाती है कि उसकी इच्छा मात्र से प्रकृति उसकी सेविका होकर तदनुसार ही बरतती है। योगियों की भी साधना की भिन्नता से सिद्धियों में भी अन्तर होता है। एक योगी जो हजारों वर्षों तक शरीर को जीवित रखना चाहता है उसे मनोलय के साथ–साथ भूतजय की साधना भी करनी पड़ेगी। यह साधना गुरुगम्य है अतः सिद्धयोगी इन साधनाओं को उसी शिष्य को कराते हैं जिन्हें वे बहुत काल तक सशरीर रखना चाहते हों। सिद्धियों में जो भेद होता है वह उसकी समाधि की दशा के आधार पर होता है। जिस की जितनी–जितनी ऊँची समाधि है वह उतना ही ताकतवर एवं प्रकृति पर शासन करने वाला होता है हमारे गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से बताया करते थे कि श्री प्रभु जी डा. गोपालनन्द जी महाराज को भूतजय की सिद्धि करा रहे थे। इससे वे भूतजयी होकर सहस्त्रों वर्षों तक भौतिक देह से रह सकते थे। किंतु ब्रह्मचारी जी की अरूचि एवं साधना शैथिल्य के कारण यह साधना छूट गई। इस प्रसंग में गुरुदेव जी बताया करते थे कि जब वह अग्नि तत्व का आकर्षक करते थे तो उनका शरीर भी अग्नि की तरह ही तपने लगता था कोई उन्हें छू नहीं सकता था। इसी प्रकार से जब वे जल तत्व की साधना करते थे तो उनका शरीर बर्फ की तरह अत्यधिक ठण्डा हो जाता था। उन्हीं साधनाओं के कर लेने पर ही योगी हिमालय की कन्दराओं में रहकर, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि पंचमहाभूतों से अनभिघात रूप फल को पाता है। भूतजय की सिद्धि का फल बताते हुए योगदर्शन में आया है कि भूतजय की सिद्धि हो जाने पर अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों का वह स्वामी होता है तथा शरीर को वज्र की भाँति बना लेता है और पृथ्वी जल

आदि उसके लिए रुकावट नहीं बनते। अर्थात् यह सब प्रकार से योगी के अनुकूल बन जाते हैं।

सिद्धियों का प्रादुर्भाव– योग दर्शन में पाँच प्रकार की सिद्धियों का वर्णन मिलता है। जो जन्म से, औषिधि से, मन्त्र से, तप से तथा समाधि से प्राप्त होती है। योगी की सिद्धियाँ समाधिजा हुआ करती हैं, उनमें मन्त्र एवं तप सहायक बन जाया करते हैं। ऋषियों ने सदा से ही मन की असीम शक्ति को पहचाना है। मन की सीमित शक्ति को असीम बनाना ही योग साधना का लक्ष्य हुआ करता है क्योंकि ऐसा हुए बिना योग की कल्पना ही व्यर्थ है। मन को शक्तिशाली बना लेने पर योगी सारे ब्रह्माण्ड पर शासन करने वाला बन जाता है। अध्यात्मज्ञान रूपी प्रासाद तक पहुँचने के लिए योगी को भिन्न-भिन्न भूमिकाओं से गुजरना होता है। उन-उन भूमिकाओं में पहुँचने पर योगी को प्रकृति पर अधिकार क्षमता के साथ-साथ ज्ञान की प्राप्ति दोनों युगपद् प्राप्त होती चली जाती है। जिस प्रकार से सूर्योदय हो जाने पर हमें सूर्य से उष्णता एवं प्रकाश दोनों साथ-साथ मिलते हैं उसी प्रकार से साधना करने वाले योगी को अध्यात्म ज्ञान के साथ-साथ प्रकृति अधिकार की क्षमता मिलती चली जाती है। यद्यपि योगी का लक्ष्य तो आत्मज्ञान ही रहता है किंतु सिद्धियाँ उसे स्वतः ही मिल जाया करती है जिस प्रकार से काशी की ओर जाते हुए किसी यात्री को मार्ग में अनेक तीर्थ स्थल प्राप्त होते हैं उन तीर्थों की प्राप्ति में उसे अलग से कोई यत्न नहीं करना पड़ता, उसी प्रकार से मुमुक्षु योगी को योग पथ में यह शक्तियाँ मिलती हैं। योगी के अलौकिक शक्ति अथवा गुण ही उसकी सिद्धियाँ कहलाती हैं। ये सिद्धियाँ इस बात का परिचय बताती हैं कि योगी ने योग की कौन-सी सीढ़ी पार कर ली है। जिस योगी में कोई सिद्धि नहीं होती उसे बद्ध ही कहना चाहिए। योगी का ऐश्वर्य ही उसका ईश्वरत्व है। जिस प्रकार छाया पुरुष का अनुसरण करती है उसी प्रकार से ऐश्वर्य ईश्वर अथवा योगी का अनुसरण करता है। कुछ अज्ञ लोग सिद्धियों की निन्दा करते देखे जाते हैं वे कहा करते हैं कि सिद्धियों की कोई आवश्यकता नहीं है अतः हेया हैं। किंतु जिस प्रकार से अग्नि के छू जाने पर सुकुमार शिशु की देह जल जाती है तो इससे अग्नि की निन्दा करके उसका त्याग करना बुद्धिमानी नहीं कहलाता उसी प्रकार से साधना मार्ग में सिद्धियाँ उपादेया होती हैं तथा ये सिद्धियाँ योगी को स्वयं वरण किये रहती हैं।

सिद्धियाँ चित्त तत्व के विलास हैं। यह बात भली प्रकार से समझ लेनी चाहिए कि जो भी सिद्धि, विभूति या चमत्कार का प्रादुर्भाव होता है वे प्रकृतिजन्य हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध प्रकृति अथवा मन-बुद्धि से ही है। आत्मा का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः सिद्धियों को आत्मा की शक्ति समझने का भ्रम नहीं करना चाहिए। जब योगी निर्बीज समाधि में प्रतिष्ठित हो जाता है तो उस समय उसका प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। उस कूटस्थ स्थिति में कोई हलचल नहीं होती। उस समय प्रकृति की साम्यावस्था होती है। सिद्धियों को समाधि के मार्ग में विघ्न माना गया है। उसका कारण यह है कि सिद्धियाँ भी वृत्तिरूप होने से शुभाशुभ संस्कारों को ही देने वाली होती हैं। सिद्धियाँ भी त्रिगुणात्मिका हैं योगी का लक्ष्य गुणातीत होना

है। सिद्धियों से पूर्णतया वैराग्य होने पर ही वैराग्य में प्रतिष्ठित हो सकते हैं। सम्प्रज्ञात समाधि में योगी को समाधि में भी कुछ न कुछ अनुभव होता ही रहता है। इसी अनुभव के रूप में योगी को प्रातिभ श्रावण आदि विशिष्ट महासिद्धियाँ प्राप्त रहा करती हैं जिनके प्राप्त होने पर योगी व्यापकता को प्राप्त होता हुआ सर्वज्ञातत्व की स्थिति को पाया करता है किंतु यहाँ भी अभी गुणों का ही अधिकार है। योगी को तो निर्बीज–निर्गुण समाधि में जाना है अतः सर्वज्ञातत्व आदि आदि परा सिद्धियाँ भी त्यागनी पड़ती हैं इसीलिए योग दर्शन में निर्बीज समाधि की दृष्टि में ये सब विघ्न बताये हैं अन्यथा तो ये महासिद्धियाँ हैं ही। योग दर्शन में सम्प्रज्ञात समाधि को असम्प्रज्ञात की दृष्टि से व्युत्थान ही माना है। महासिद्धियों से भी जब मन उपराम हो जाता है तब पर वैराग्य की प्रतिष्ठा होती है जो निर्बीज समाधि का कारण है। ''**कर्तुमकर्तमन्यथा कर्तुमशक्तः सः सिद्धः**'' बिगड़े को बना दे, बने को बिगाड़ दे वही सिद्ध कहलाता है वही सर्वसमर्थ है।

''सारा जगत् भगवान् से निकला है और इसमें सर्वत्र केवल भगवान् ही भरे हैं। भगवान् सर्वथा कल्याणमय सद्गुणसमुद्र हैं। अतः जगत् में भी सर्वत्र सर्वथा कल्याणमय गुणसमूह ही भरे हैं। तुम्हारी आभ्यन्तरिक आँखें तमोमयी तथा अशुभदर्शनशीला हैं, इसलिए तुम्हारा मन निरन्तर अशुभ का क्रीडाप्रांगण बन रहा है। रात-दिन अशुभ के समूह ही उसमें धमाचौकड़ी मचाते रहते हैं। इन्हें यों ही रहने दो, इन्हें निकालने की बात मत सोचो। बस, लगन के साथ मंगलमय भगवान् की मंगलमयता तथा उनकी सद्गुणावली को देखना आरम्भ कर दो। जब उनकी मंगलमयी सद्गुणावली को हृदय में स्थान मिल जायेगा, तब अशुभ विचार वैसे ही तुरंत विलीन और नष्ट हो जायेंगे जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार विलीन और नष्ट हो जाता है।''

गुरु-भक्तों की गति

ब्र. गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव

एक दिन श्री प्रभुजी ने मुझे ध्यान में बैठाया तो श्री प्रभु जी कृष्ण स्वरूप में सामने प्रकट हुए। चक्राकार श्री प्रभुजी का प्रकाश फैल रहा था। मैंने श्री प्रभुजी से प्रश्न किया कि जो व्यक्ति इस मार्ग के साधन-सम्पन्न होते हैं उनकी मृत्यु किस प्रकार होती है? श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि ऐसे भक्तों की तीन श्रेणियाँ होती हैं। प्रथम वह, जो गुरु को अपना आधार समझते हैं तथा उनमें ही विश्वास करते हैं। उनमें ध्यान और योग की सामर्थ्य नहीं होती है और न किसी प्रकार का विचार होता है। द्वितीय वह जो गुरु को अपना कर्त्ता-धर्त्ता समझते हैं तथा पुण्य फल के दाता व सब प्रकार के रक्षक, हर समय संग रहने वाले समझते हुए धारणा करते हैं तथा योग भ्रष्ट हो जाते हैं। तृतीय वह, जो अपने तन-मन और धन को अपना समझते ही नहीं हैं तथा सब कुछ गुरु के अर्पण कर देते हैं। उन्हें संसार के किसी भी पदार्थ से सुख-दुःख नहीं होता। वह योग में पूर्ण होते हैं। जो प्रथम अवस्था की विश्वासमय धारणा किये हुए हैं उनका मृत्यु अवस्था का स्वरूप देख, इतना कह कर ध्यान-अवस्था में ही काशी में एक मकान देखने में आया। वहाँ पर एक व्यक्ति मरणासन्न दिखाई पड़ा। श्री प्रभुजी ने कहा- इसके अन्दर प्रवेश करो। अन्दर प्रवेश करके देखा कि नाभि से प्राण उठकर हृदय में आये। हृदय से कण्ठ में और कण्ठ से नेत्रों द्वारा बाहर निकल गये। तब श्री प्रभु जी ने कहा कि यह भगवान बुद्ध का शिष्य था। जब इसके सूक्ष्मशरीर में प्रवेश करके देखो। जब मैंने उसके सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया तो उसके सूक्ष्म शरीर के सामने बुद्ध भगवान का स्वरूप था और उस स्वरूप के ऊपर उसकी दृष्टि थी। उसका कर्म-भोग नर्क लोक में था। वहाँ राक्षस उसको सता रहे थे। उसके शरीर में भाले भेदते थे किन्तु वह प्रसन्न था। उसको किसी प्रकार का कष्ट प्रतीत नहीं होता था और उसके भाले नहीं लगते थे तथा न उसके घाव ही होते थे। श्री प्रभु जी ने कहा- इसकी धारणा गुरु के अन्तःकरण में थी। इसलिए अन्तःकरण की धारणा नेत्रों द्वारा निकल कर प्राण को ले चली थी। इसके पश्चात् श्री प्रभु जी ने कहा कि यह इसी प्रकार वासनाओं से मुक्त होता आ रहा है। फिर जिस स्थान पर बुद्ध भगवान बैठे थे वह उसी स्थान पर कुत्ता भी बना। मैंने पूछा कि यहाँ आकर भी यह कुत्ता बना। श्री प्रभुजी ने कहा कि यह इसी प्रकार कुत्ता भी बना, क्योंकि कुत्ता बनने के संस्कार तो थे ही, साथ ही साथ गुरु से निश्चल प्रेम भी था। इस कारण यहाँ का कुत्ता बना। एक दिन भगवान बुद्धदेव की दृष्टि कुत्ते पर पड़ी तो उसके प्राण निकाल कर स्वर्ग भेज दिया। स्वर्ग में भोग भोगने के पश्चात् उसने योगी कुल में जन्म लिया। फिर दूसरे कोटि के मनुष्यों की हालत दिखाई। एक मनुष्य के हृदय में प्रकाश

हुआ और प्रकाश विद्युत स्वरूप में सूक्ष्म शरीर में आया। उसका प्रकाशमय सूक्ष्म शरीर कण्ठ में आया। कण्ठ से पिछले स्थान में गया। वहाँ से भ्रकुटि में आया और फिर वहाँ से नेत्रों द्वारा बाहर हुआ। अब उसके सूक्ष्म शरीर में श्री प्रभु जी ने मुझको लेकर प्रवेश किया तब फिर मैं क्या देखता हूँ कि गुरु की गोद में वह लेटा हुआ है। सब देव–योनियों में भी प्रवेश करके स्वर्गादिकों को भोगता हुआ साक्षी रूप से रहता है। इसको सुख–दुःख की भावना भी प्रतीत नहीं होती, बाद में वह पवित्र योगियों के कुल में जन्म लेकर मोक्ष पाता है। फिर तीसरी कोटि के मनुष्यों की हालत दिखाई। एक बार एक योग साधक शिष्य ने ध्यान में गुरुदेव से पूछा कि मेरे भोग संस्कार है या नहीं? तब उनके गुरुदेव ने उत्तर में कहा कि अब शरीर छोड़ सकते हो। संस्कार शेष नहीं है। तब उसने गुरुदेव का ध्यान किया और उस ध्यान से प्राण–प्राण कोषों से खिंचकर हृदय में आ गए। हृदय से प्रकाश युक्त गोल मण्डल ऊपर कण्ठ में आया व कण्ठ से पीछे को गया। फिर भ्रकुटि में आया। भ्रकुटि के मध्य में एक इंच लम्बा पर्दा उठा। गोल मण्डल ने उसमें प्रवेश किया। प्रवेश करके ब्रह्म रन्ध्र के मध्य में चक्र लगाना आरम्भ किया। वहाँ से उसने संकल्प उठाया कि यह कहना चाहिए। उसके संकल्प मात्र से ही ब्रह्म रन्ध्र फट गया। वह गोल मण्डल उसमें से निकलकर निराकार में लीन हो गया।

मन के विचार

(श्री सुभाषजी लखोटिया)

मन तो चंचल है, यह बात सर्वविदित है, परंतु हमें चाहिए कि हम सदैव अपने मन में केवल सकारात्मक विचार ही लायें। सकारात्मक सोच जब आपकी रहेगी तो मन प्रसन्न रहेगा और जब मन प्रसन्न रहेगा तो सेहत पर इसका सीधा असर पड़ेगा और सेहत अच्छी रहेगी। इसके विपरीत अगर हम नकारात्मक विचारों को ही सोचते रहेंगे तो बेचारा दुःखी मन सेहत पर भी प्रभाव डालेगा और सेहत खराब रहने लगेगी, अनेक प्रकार की बीमारियों से आप ग्रस्त हो जायेंगे और उसका सीधा असर यह होगा कि आपको अपनी जिन्दगी रोचक नहीं लगेगी, भार लगने लगेगी। साथ–ही–साथ अनेक बीमारियों के घेरे में आप कैद हो जायेंगे। डॉक्टर और दवाई का साथ मजबूत हो जायेगा और अन्त में जीवन जीने की ललक नहीं रहेगी। अतः आप कम–से–कम अपने स्वयं के स्वार्थ के लिए ही केवल प्रतिपल सकारात्मक सोच को अपने पवित्र मन में स्थान दें।

इस बात में जरा भी सन्देह नहीं है कि आपके विचारों का प्रभाव आपके मन पर पड़ता है। अतः इस मानव जीवन को अच्छा व्यतीत करने के लिए प्रतिपल केवल अच्छे–अच्छे विचार मन में रखें। अच्छे विचार सोचने से आपकी जीवनीशक्ति बढ़ेगी और साथ में प्रतिपल स्फूर्ति आप महसूस कर सकेंगे।

अगर सोचते समय कोई नकारात्मक विचार आते हैं तो उन्हें आने दें और सुरत ही जाने भी दें और फिर केवल सकारात्मक विचारों की ओर ही अपना मुँह मोड़ लें। इससे आपको आपकी जिन्दगी कुछ ज्यादा रोचक लगने लगेगी और आप ज्यादा गतिशील एवं क्रियाशील व्यक्तित्व वाले व्यक्ति बन पायेंगे।

गुरु आशीर्वाद, वर्ष 2002 में दिल का आप्रेशन

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब जि. सिरमौर (हि.प्र.)

पाँच मई दिन रविवार था, सीमा सहित दिल्ली आया।
कैसे होगा प्रबन्ध खून का, मन में शंका ले आया।।

सीमा–मनिमा बेटों बोली, हम दे देंगे अपना खून।
साहस रखो पाप जी, क्यों होते हो मजबून।।

सीमा ने फोन कर दिया, पालमपुर से सिप्पू आया।
बिना समय गंवाये बच्चे ने, खून का सब प्रबन्ध कराया।।

वो साथी दिल्ली से लाया, उन्हें देख मैं हर साया।
उन दोनों ने खून दे दिया, आशीर्वाद गुरु का पाया।।

मैंने अपनी आंखें मूंद ली और ध्यान लगाया सद्गुरु का।
आशीर्वाद दिया गुरुवर ने, रोम रोम हर्षा तन मन का।।

नौ मई दिन गुरुवार था, मुझे आप्रेशन को बुलवाया।
सफल हुआ आप्रेशन दिल का, बीस घंटों में होश आया।।

मैंने इधर–उधर को देखा, और पानी मांगा पीने को।
गुरु मंत्र का जाप किया, तब शक्ति पाई जीने को।।

दे रहे थे आशीष गुरुजी, मंद–मंद मुस्काये थे।
मेरे प्राणों की रक्षा करने, गुरुधाम से आये थे।।

संस्कृति पर पाँव न रख देना

श्रीमती सावित्री देवी चौरसिया

सावधान, पाश्चात्य संस्कृति की मांसल देही दर्शन की रुपहली झाँकी, युवाओं और किशोरों को मृगमरीचिका की तरह भ्रमित करते, मर्यादा के सभी बन्धनों को तोड़ते एक विकृत संसार की रचना में सहयोगी बनाती जा रही है। आज सभी सीमाओं को पार करते, पाश्चात्य संस्कृति के हिमायती टी.वी. चैनलों में विवाह से पूर्व यौन सम्बन्धों पर बहस कर लिविंग टुगैदर की स्वीकृति की वकालत करने वाले भारतीय संस्कृति के विरुद्ध आक्रमण में शामिल वे लोग हैं, जो व्यवसाय करते, भारत को दकियानूसी, पिछड़ा देश साबित करने में लगे हैं और अपने सुसंस्कार, संस्कृति को भूल इस दुराग्रही पश्चिमी परम्परा को अपनाते स्वयं नहीं जानते कि वे किस समाज की रचना करने जा रहे हैं।

नवोदित युवा पीढ़ी को दिग्भ्रमित करने वाली संस्कृति की रंगीनियाँ इन्द्रिय सुख जरूर प्रदान कर सकती हैं, परंतु इस शरीर सुख के आगे भी कोई सुख है, वह सुख आत्मिक सुख है, उस आत्मिक सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि इन्द्रिय सुख में रंगीनियाँ हैं, तो आत्मिक सुख में परमानन्द है, एक क्षणिक, अतृप्त है, तो दूसरा स्थायी और तृप्त है।

लिविंग टुगैदर विवाह हीन सहवास है, यह ऐसी व्यवस्था मानी गयी है, जिसमें सन्तान पैदा किये बगैर पार्टनर के साथ रहते शारीरिक भूख मिटा ली जाती है, और साझेदारी रास नहीं आयी, तो स्वतन्त्र, फिर दूसरा पार्टनर जिससे तालमेल बैठ जाये, उसे अपना लिया जाता है।

इसे वे सैक्स का पूर्ण आनन्द मानते हैं, किसी विशेष को अपना मानने से क्या मतलब, सामाजिक बन्धनों में बँध बच्चों को पैदा करने की क्या जरूरत, ऐसी सोच वाले भूल जाते हैं कि सेक्स की पूर्ण तृप्ति स्वछन्दता में कदापि नहीं है, यह तो जानवरों–सी नियति है, जानवर अपने ऋतु में काम के वशीभूत हो क्रियारत हो जाता है, जानवर, जानवर होता है, प्रकृति ने उसे भी समय–समय पर प्रजनन हेतु बन्धित किया है, प्रकृति ने उसे विवेक दिया न विचार ही। पर मनुष्य के पास विवेक है, विचार है, अनादिकाल से मनीषियों के दीर्घ चिन्तन ने भारतीय संस्कृति को अपनी मान्यताओं, विशिष्टताओं से संस्कारित किया है, उन्हें ताक में रख, नकार कर केवल यौन–सन्तुष्टि के लिए हम भारतीयों को भी लिविंग टुगैदर की आयातित संस्कृति की औचित्यता का प्रमाण–पत्र देना नारकीय अवस्था की ओर जाना है।

लिविंग टुगैदर की परम्परा एक स्वच्छन्दतापूर्ण बीमारी है, जिससे देश का ढाँचा विघटित होने की सम्भावना से नकारा नहीं जा सकता है। आज की पीढ़ी में शारीरिक भूख मिटाने की खुमारी है, जिसे वे उन्नति की सीढ़ी मानते हैं। आज उन्हीं टी.वी. चैनलों का

दुष्परिणाम यौन–शोषण, ब्लू फिल्म, शरीर–व्यवसाय भी सबके आँखों के सामने है। आज टी. वी. के ही सभी मीडिया चैनल चीख–चीखकर सबको जगाते, खबरदार करते पूछते हैं, यह सब क्या है? हम कहाँ जा रहे है? बचो इस सबसे?

इस उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ने वाले भूल जाते हैं कि पाश्चात्य देशों के ये संस्कार या परम्पराएँ उचित होतीं, तो आज इतनी अशान्ति, टूटन, हताशा, अविश्वास पश्चिमी देशों में है, नहीं होता। तो अपार भौतिक सम्पन्नता के बाद भी वे आत्मशान्ति की खोज में भारत न दौड़े चले आते, वे भारतभूमि की गोद में आ अपार शान्ति का अनुभव करते हैं।

विवाह हमारे देश की पवित्र बन्धनों की सामाजिक स्वीकृति है। जिसका उद्देश्य केवल भोग नहीं, आत्मा का विकास है, इन पवित्र बन्धनों में त्याग, सेवा, प्यार, कर्त्तव्य की भावना निहित है, जन्म–जन्मान्तरों के मिलन की अटूट आस्था है। इस सान्निध्य में शारीरिक सुख की चरम सीमा है, जिसमें दो शरीर एक हो आत्मिक सुख प्राप्त करता है। इस सुख में गर्व, आनन्द, प्यार और सन्तोष की अबाध मधुरता होती है। सबसे बड़ी बात एक–दूसरे पर अधिकार–कर्त्तव्य की भावना निहित होती है। यही अधिकार नये संसार की रचना कर उनके पालन–पोषण के कर्त्तव्यता की ओर प्रेरित कर हार्दिक बन्धनों में बाँध अभूतपूर्व प्रसन्नता का बोध करता है, जो प्रकृतिप्रदत्त वरदान है। अपने धर्म को निबाहने का भारतीय संस्कार है।

हमारे भारतीय संस्कार से संस्कारित पति–पत्नी अपने को स्वच्छन्द, स्वतन्त्र नहीं मानते, वरन् एक–दूसरे के पूरक मानते हैं, होते हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा होता है। जन्म–जन्म का जीवन साथी हो, एक सुन्दर आनन्दित जीवन व्यतीत करते, खालीपन का अनुभव नहीं करते हैं। यह गरिमा है हमारे वैवाहिक बन्धनों की, महिमा है हमारे अटूट बन्धनों की; क्योंकि विवाहित जीवन एक तपोभूमि है, अव्यवस्थी का मार्ग नहीं।

उच्छृंखलता के सोपान मानते, कथित यौन–स्वच्छन्दता के हिमायतियों को सोचना चाहिए यदि सीमाविहीन जोड़े एक–दूसरे की एकरसता से ऊबकर यदि यौन सुख हेतु दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, तो उन्हें कितनी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए? उसकी सीमा भी है या नहीं? कब तक ऐसी स्वच्छन्दता चाहेगा? क्योंकि यौवन का उन्माद एक स्थिति तक ही होता है। यह शरीर है, व्याधि से ग्रस्त हो सकता है। मनुष्य पर अन्य विपत्तियाँ भी आ सकती है। स्थिति बदलने पर कौन साथ देने आगे आयेगा? घुटन की जिन्दगी जीते, असन्तोष के गर्त में गिरने के सिवाय और क्या मिल सकता है। ऐसे कितने उदाहरण हैं, जिन्होंने लिविंग टुगैदर के तहत जीवन जीया, शरीर के ढलते ही या स्थिति के बदलते ही एकाकी जिन्दगी जीने को विवश हो गये और बन्द कमरे में चार दिन सड़े पड़े रहे, कोई खोज–खबर लेने वाला ही नहीं, ये है लिविंग टुगैदर के नतीजे, शारीरिक सुख का अंजाम। वास्तव में लिविंग टुगैदर की सोच जीवन को भ्रष्ट करने की विकृति है, जीवन साथी, जीवन साथी होता है, कोई कपड़ा नहीं होता जो उतारा और फेंक दिया; अतः ऐसी खुमारी, जिसके उतरने पर सब खो जाये, कहाँ तक उचित है? जिस विदेशी

संस्कृति को अपनाने को हम आतुर है, वहाँ की स्थिति से हम सब अवगत है। वहाँ की कुण्ठा, तनाव, डिप्रेशन के चलते अपराधों की संख्या में विकट बढ़ोत्तरी हुई है. आत्महत्या, हत्याएँ साधारण बात है। कम उम्र की बच्चियों के माँ बनने की समस्या किस प्रगति, सुख का संकेत कर रही है? यह सब किशोरों में बढ़ते यौनाचार का परिणाम है, जो पाश्चात्य देशों ने रंगीनियों को ही अन्तिम सत्य मान अपनाया है।

इन्हीं रंगीनियों में डूबे हमारे आज की पीढ़ी के आदर्श फिल्मी सितारे अपनी जिन्दगी में अगल लाते, उसे मान्यता दिलवाने में आतुर दिखाई देते है। उनका तर्क है– आज के परिवेश में मनुष्य अपनी व्यस्तता से त्रस्त है, इस तनावपूर्ण जिन्दगी में उसे सेक्स ही ऐसा मनोरंजन का साधन लगता है, जो कुछ क्षणों के लिए ही सही तनाव से मुक्ति दिलवाता है। जबकि ऐसा नहीं है। ऐसे सम्बन्ध न मानसिक शान्ति देते है, न शारीरिक तुष्टि, क्योंकि उसमें समर्पण का भाव नहीं रहता, वरन् ये सम्बन्ध संशित ही रहते है। इस प्रकार के यौनाचार से बीमारियों से ग्रस्त होने का भय होता है। इस प्रकार यौन विकृतियों का सामना करना पड़े, तो शारीरिक कष्ट तो आयेगा। पर मानसिक शान्ति खो, अवसाद में डूब अपने अस्तित्व को नष्ट करने के सिवाय फिर वह और कुछ नहीं सोच पायेगा, नजर नहीं आयेगा।

फिल्मी सितारे– जिनका अनुकरण युवा पीढ़ी करती है, उन्हें समझना होगा, उनकी जिन्दगी और हमारी आम लोगों की जिन्दगी में अन्तर है। वे कितने ही बदन बदल लें, उन्हें क्या फर्क पड़ता है; परन्तु साधारण जिन्दगी में यह सब सरल नहीं है, विशेष तौर से महिलाओं की स्थिति समाज में दयनीय और निन्दनीय हो जाती है। चैनलों में यौन स्वच्छन्दता की खुली पैरवी करते स्टार्स उनका अपना क्या है, वे तो व्यवसायी हैं, जो अपने शरीर को माल की तरह प्रस्तुत करते है। ईश्वरीय देन की तरह नहीं, यह जिन्दगी कितनी मंगलकारी है यह सभी जानते है, सभी के सामने है।

इसे भारतीय संस्कृति पर आक्रमण ही कहा जा सकता है, जब स्टार चैनल ने एक सेक्स वर्कर नलिनी जमीला को इस प्रकार प्रस्तुत किया, मानों वे हिन्दुस्तान की सबसे आदर्श महिला हो। कोई उनके चरणों को छूने को उत्सुक था, तो कोई अपने गले लगाने को आतुर था, ऐसे बेतुके आदर्शहीन संस्कारहीन बातों का प्रसारण कर क्या यह कहना चाहते है कि उस महिला की आदर्शता का अनुसरण सब महिलाएँ कर देश को इस प्रकार की प्रगति के सोपान में बैठायें? क्या यह कहना चाहते है कि हमारे देश की वे नारियाँ, जिन्होंने विदेशियों के हाथ में जाने के बजाय, अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए अपने आपको अग्नि में समर्पित कर जो उत्सर्ग किया, वह सब मूर्खता थी? शायद भारतीय संस्कृति की महत्ता, विशिष्टता नहीं जानने वालों की यही धारणा है, तभी तो ऑस्कर मताताओं की फिल्म 'मदर इण्डिया' देखने के बाद यह राय थी कि सूदखोर महाजन का पात्र राधे था, फिल्म की नायिका को अपने पति के जाने के बाद सूदखोर महाजन से विवाह कर लेना चाहिए था, वह नायिका पात्र मूर्ख औरत थी, जो

स्वयं कष्ट उठाया और बच्चों से उठवाया, पर हम जानते हैं, विवाह प्रेम की वह व्यवस्था है, जो हमारी मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक इन्द्रियों के विकास का साधन है, हम जानते हैं कि हमारा देश महान् विभूतियों का है, हमारा दर्शन, चिन्तन, संस्कृति, व्यवस्थित समाज में ढालने वाली राह है।

यह शक्ति का देश है, जहाँ नारी की उपासना की जाती है, न कि नारी को बेइज्जत किया जाता है। जैसे अभी कुछ दिन पहले ही विदेश की एक शराब कम्पनी ने माँ दुर्गा के हाथों में शराब की बोतलें रख प्रचार करने की धृष्टता की। यह उनकी स्वयं की शिराओं का वह गन्दा दूषित विकार है, जो उन्होंने माँ दुर्गा के हाथ में बोतलें रख प्रकट किया, वे हमारी शक्ति माँ का क्या अपमान, उपहास करेंगे, यह तो उनकी स्वयं की संस्कृति की विकृति है, जहाँ वे स्वयं अपने नारी समाज की महत्ता को नहीं जानते हैं, अतः माँ दुर्गा के हाथों में बोतलें सजा नारी–व्यापार की विकृत मानसिकता का परिचय दिया है, यह है वहाँ नारियों का सम्मान।

भारत देश में कोई भी सांसारिक कृत्य, जिसे धार्मिकता के नाम से विभूषित किया गया है, वह नारी के बिना अपूर्ण है। शिव जहाँ शक्ति युक्त होता है, तभी समर्थ होता है, शक्ति के अभाव में शिव 'शिव' न रहकर शव रह जाता है, शिव नर, शक्ति नारी का यह स्वरूप अर्धनारीश्वर के रूप में सृष्टि की रचना के साथ ही अवतरित है, अर्धनारीश्वर का अद्भुत रूप हमारी भारतीय संस्कार की अनूठी, विलक्षणता का आधार है, यथार्थ है, अर्धनारीश्वर की भावनाओं का ऐसा सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् मेल, जिसमें सन्धि का पता तक नहीं है, उस देश में स्वच्छन्दता, स्वतन्त्रता का भाव, अविवेकपूर्ण, अमर्यादित, अमंगलकारी, विघटनकारी है।

यह सत्य है कि संचार के माध्यम से हुई क्रान्ति को नकारा नहीं जा सकता, आज संसार में एक विश्वसंस्कृति का विकास हो रहा है, भारत तो वह पूर्व का देश है, संसार की तपोभूमि है, गुरु है, मार्गदर्शक है, तभी हजारों वर्ष पूर्व विश्व को कुटुम्ब मानते 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मन्त्र दे, शान्ति, प्रेम, सहयोग का मार्ग दिखाया। फिर भी आज हम भी बहुत से पाश्चात्य रिवाजों को अपने में आत्मसात् करने–मनाने लगे हैं, संसार के हम करीब हों, पर अपनी बुनियाद पर खड़े रहें, यह चेतना अपने अस्तित्व को बचाने के लिए होनी ही चाहिए।

विश्व संस्कृति की अपने रंग, सुगन्ध विविधता रहेगी और होना भी चाहिए, बस हमारी चेतना जागृत हो कि हम अपने संस्कारों की गरिमा का मान करते, विश्व के श्रेष्ठ संस्कारों को सुनते, निकृष्ट संस्कारों को पास भी न फटकने दें। उदारवादिता में हम अपने भारतीय मूल्यों को हेय समझ काँटेपूर्ण राह पर न चलें, नहीं तो पैरों का लहूलुहान होना स्वाभाविक है। अतः आज भारतीयों को सावधान होना होगा, अन्यथा विश्वसंस्कृति के नाम पर भारतीय संस्कृति, साहित्य, संस्कार मृतप्राय हो, विदेशियों का मानसिक दास बन अपना सब कुछ खो बैठेगा, और उसी प्रकार हो जायेगा जैसे ईख से रस निकल जाने पर सीठी रह जाती है, अतः सावधान विश्वसंस्कृति की चकाचौंध में अपनी संस्कृति पर पाँव न रख देना।

सहारनपुर में शताब्दी समारोह की धूम

संजीव शर्मा, सहारनपुर

योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जन्म शताब्दी समारोह सहारनपुर में 2, 3, 4 अक्टूबर को बहुत धूम-धाम से मनाया गया। 2 अक्टूबर को श्री सिद्धयोग सत्संग सभा के तत्वावधान में श्री सिद्धयोग शक्तिसंचार मन्दिर में आचार्य अवनीश भटनागर के निर्देशन में सत्संग का संचालन हुआ जो बहुत धूम-धाम से चलता रहा। प्रभु भक्त भाव विभोर होते रहे। उन्हें हर पल ऐसा आभास होता रहा कि करुणामय सद्गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी सत्संग के मध्य साक्षात् विराजमान है। सत्संग समापन से पूर्व सभी गुरु भक्तों ने भावपूर्ण नृत्य किया और आयोजक ने फूल, टाफियाँ, खिलौने और रुपये पैसों की वर्षा करके सत्संग को और भावपूर्ण बना दिया। शताब्दी के पावन अवसर के उपलब्ध में सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी की एक सौ एक चित्रों की प्रदर्शिनी लगाई गई जिसमें एक से एक पुराने और दुर्लभ चित्र प्रदर्शित किये गये दर्शको ने बड़े श्रद्धाभाव से प्रदर्शनी का अवलोकन किया। इसी बीच हमें एक खेद जनक समाचार मिला कि हमारे कार्यक्रम के अध्यक्ष योग आचार्य श्री दासलाल जी महाराज ने यह सूचना भेज दी कि किसी कारणवश हमारा आना सम्भव नहीं है हमारे तो जैसे पैरों के नीचे से जमीन ही खिसक गई सारे कार्यक्रम रोक दिये गये और मन टूट गया। सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी से कातर प्रार्थना की गई। अब क्या होगा? इस विचार में खोये थे कि रात्रि के तीसरे पहर में श्रीमती रश्मि सक्सैना को सद्गुरु देव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के कंबल ओढ़े हुए दर्शन हुए और वह कार्यक्रम स्थल के बन्द दरवाजे को देखकर यह कह रहे है कि "खोल दो इसे" श्री सद्गुरुदेव जी के पधारते ही सारे कार्यक्रम की रूपरेखा ही बदल गई। आदरणीय योगाचार्य श्री दासलाल जी महाराज का 3 तारीख को प्रात: ही फोन आ गया कि वह आ रहे है हमारे मन में तो जैसे तीव्र शक्ति संचार ही हो गया सारे रोके गये कार्य पुन: शुरू कर दिये गये मन उत्साह से भर गया। कार्यक्रम सुचारु रूप से चल पड़ा।

3 अक्टूबर को श्री सद्गुरु चरणों में श्रद्धालु बच्चों में श्री प्रभुजी के अच्छे संस्कार बनें इसलिए बच्चों की शुभभावना को बढ़ावा देने के लिए दो तरह की प्रतियोगितायें रखी गई कि सद्गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी के स्वरूप का श्रृंगार करके लाना है और दूसरे उनके ऊपर दस लाइन लिखनी हैं कि "हमारे गुरुदेव कैसे है"? जिनके स्वरूप का श्रृगार एव दस लाइन सबसे प्रभावी होंगे उन्हें पारितोषिक एव प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया जायेगा। हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब बड़ी मात्रा में श्रृंगारी स्वरूप व दस-दस लाइनें लिखे निबन्ध प्राप्त हुए जब श्रृंगारी स्वरूपों और लेखों का निरीक्षण किया गया तो सारे स्वरूप इतने

अच्छे सजाये गये थे कि प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान के साथ-साथ सभी को पारितोषिक देने का फैसला किया गया और इसी प्रकार लेख प्रतियोगिता में भी किया गया। रंगोली सज्जा में प्रथम स्थान श्रीमती शकुन्तला गोयल, द्वितीय स्थान मोना रस्तोगी व विजय शर्मा, तृतीय स्थान श्रीमती रेनू बंसल, लेख प्रतियोगिता में प्रथम स्थान कीर्ति कौशल, द्वितीय स्थान कु. वेदिका भटनागर व मयंक गोयल, तृतीय स्थान श्रीमती पुष्पा हंस व गोविन्द टिकू आदि का रहा।

3 अक्टूबर सायं में योगाचार्य श्री दासलाल जी महाराज के पधारने पर उनका नगर पूर्ण स्वागत स्टेशन पर किया गया। बाद में श्री सिद्धयोग शक्ति संचार मन्दिर में सायंकाल की दिव्य आरती की गई। इसके बाद रात्रि दो बजे तक श्री महाप्रभुजी एवं श्री सद्गुरु देव जी के दरबार का भव्य श्रृंगार किया गया और 4 अक्टूबर 6 बजे प्रातः दिव्य आरती, गीता पाठ व योग सीखो और करें के अन्तर्गत जीवन तत्व साधन एवं योगासन व राजू शुक्ला व राजेश द्वारा किये गये सूत्र नेति, जलनेति व दुग्धनेति में आधा किलो दूध नाक से आचार्य अवनीश ने पीकर दिखाया बाद में श्री रामलाल महाप्रभुजी के समय में दिया जाने वाला कच्ची लौकी एवं चने की दाल का नाश्ता दिया गया बाद में मीठा दलिया प्रसाद में वितरित किया गया। 4 अक्टूबर दोपहर 3 बजे से विशाल योग सम्मेलन प्रारम्भ हुआ जिसमें अध्यक्ष का पद योगाचार्य श्री दासलाल जी महाराज ने सुशोभित किया और संचालन आचार्य अवनीश ने किया अन्य अतिथि वक्ता [illegible] आश्रम कनखल से पधारे योगाचार्य श्री ईश्वर चन्द शर्मा जी B.H.E.L. हरिद्वार से पधारे श्री ललित श्रीवास्तव जी एवं स्वामी देवीदयाल जी के शिष्य मुस्तदी लाल जी व योगाचार्य श्री गुलशन कुमार आदि वक्ताओं ने भाग लिया। योग सम्मेलन का विषय रखा गया "योग, योगि एवं योग का प्रभाव" इन तीन बिन्दुओं पर योग सम्मेलन में सभी वक्ताओं ने अपने विचार प्रकट किये। अपने अध्यक्षीय प्रवचन में योगाचार्य श्री दासलाल जी महाराज ने तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान पर प्रकाश डाला। उन्होंने अनेक गुरु लीलाओं का प्रवचन में जिक्र किया। श्री दासलाल जी महाराज के प्रवचन के पश्चात आचार्य अवनीश ने सभी वक्ताओं का आभार प्रकट करते हुए संकीर्तन कराया और भाव विभोर होकर फूल, टाफियाँ, खिलौने, रुपये पैसों की वर्षा करके शताब्दी समारोह को और भाव पूर्ण बना दिया इसके बाद प्रतियोगिताओं और योग सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी प्रतिभागियों एवं वक्ताओं को एक-एक गर्मशॉल पुष्पमाला व धनराशि देकर सम्मान किया और प्रतिभागियों को पारितोषिक एवं प्रमाण पत्र योगाचार्य श्री दासलाल जी महाराज द्वारा प्रदान किये गये इसके बाद श्री आनन्द बंसल एवं गोविन्द टिकू, संजीव कौशल द्वारा "मेरे चन्द्रमोहन करतार" भजन गाकर समारोह को और भक्तिमय बना दिया। इसके बाद महा दिव्य आरती का आयोजन हुआ जिसमें सभी भक्तों ने अपनी-अपनी आरती की थालियाँ सजा कर उसमें एक-सौ एक बत्तियाँ जलाकर सद्गुरु देव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की महाआरती

की ओर मण्डारा प्रारम्भ होने से पहले आचार्य जी का योग पर सारगर्भित प्रवचन हुआ। इस प्रकार से सहारनपुर नगर में एक दिन का यह कार्यक्रम बहुत ही रोचक रहा।

गुरुदेव हमारे मन-मन्दिर में

जगदीश राए बंसल "अधम", उत्तम नगर-देहली

गुरु देव हमारे मन मन्दिर में-दर्शन दिया करो।
मोक्ष दायिनी गीता वाणी-हमको सुनाया करो।।

जब जब याद करूं गुरु देवा, मन भर भर कर आता है,
पांचों इन्द्री बदीया बरसे, क्लेश मुझे नहीं रहता है।
संस्कार मेरा कैसा आया, निज शरण दिया करो।। गुरुदेव...

मैं तो मति मन्द खारा हूँ तुम करुणा कर प्रति पाला हो,
हे भाग्य विधाता पतित पावन-सिद्ध योग के दाता हो।
जब जब भू पर पग धरो, मेरी सेवा लिया करो।। गुरु देव...

प्रभू दे दो मुझ को ऐसी शक्ती, पा जाऊं तेरे चरणों की भक्ती,
लगी रहे पल पल सुरती, अन्त समय मिल जाए मुक्ती।
चंचल चित्त मेरा शान्त रहे, डेरा मन में लगाया करो।। गुरु देव...

नैया भवर में डाल रही, तुम ही मेरे खेवैया हो,
निराकार साकार चराचर, योगेश्वर हित कारी हो।
श्री चरणों में गंगा बहती, 'अधम' गोता लगाया करो।। गुरु देव...

ज्ञान विज्ञान योग

कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

योग, ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न विद्या है। सामान्य रूप से इसके सब अधिकारी है। जहाँ अधिकार होता है, वहाँ कर्तव्य पहले से ही निर्धारित होता है। योग व्यक्ति को योग्य बना देता है। गीता में भगवान ने अर्जुन को योगी बनने का उपदेश दिया– "तस्मात् योगी भवार्जुन"। योगेश्वर भगवान कृष्ण ने युद्ध के मैदान में अर्जुन को परा विद्या और अपरा विद्या का उपदेश करते हुए बताया कि परा विद्या जो चेतन जीव के रूप में अपरा जो अचेतन या जड़ जीव दोनों को अपने में धारण करके सृष्टि क्रिया का कार्य कर रहा हूँ। तात्पर्य यह कि इस सम्पूर्ण सृष्टि के मूल कारण में वह परमात्मा विद्यमान है। संसारी जीवों के समस्त कार्य व्यापार उसी सत्ता से स्वाभाविक गति से चल रहा है। युद्ध के मैदान में अर्जुन इस रहस्य को समझ गया कि युद्ध में मारने तथा मरवाने का काम इन्हीं के द्वारा हो रहा है। इसलिए भगवान के विज्ञानवत उपदेशों को ज्ञानी की तरह श्रवण करना ही श्रेयस्कर है। क्योंकि उसी की सत्ता सर्वत्र सृष्टि में सदैव दिख रही है। वह जल, थल, वेद, नभ, गन्ध आदि में विद्यमान है। अपने स्वरूप को विभिन्न रूपों में व्यक्त करते हुए कहा कि–

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययो:।
प्रणव: सर्ववेदेषु शब्द: खे पौरुषं नृषु।।
पुण्यो गन्ध: पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।।

अर्थात् हे अर्जुन ज्ञान रूपी जल में विज्ञान रूपी उसका रस हूँ। इसी प्रकार ज्ञान रूपी चन्द्र और सूर्य में विज्ञान रूपी प्रकाश हूँ। वेदों में विज्ञान रूपी ओंकार, आकाश में शब्द, पुरुषों में पुरुषत्व हूँ। इसी प्रकार पृथ्वी में पवित्र गन्ध, अग्नि में तेज तथा सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन और तपस्वियों में विज्ञान रूपी तप हूँ। इस प्रकार भगवान ने अर्जुन को ज्ञान की बातों को विज्ञान सम्मत बताया। स्वयं को भगवान ने कहा कि जहाँ कहीं भी किसी प्रकार की शक्ति का रूप मनुष्य के जीवन में दिखता है। वह सब ईश्वर ही है। जीव का कोई अस्तित्व नहीं है। जीव जड़ रूपी शरीर को धारण किये हुए है। जीव के साथ भगवान का खेल है। जीव अहंकार वश किसी भी चीज में अपनत्व की आसक्ति करता है। जो अज्ञानता का प्रतीक है। अज्ञानता के कारण जीव में जड़ता में डाल दिया है। इसी अज्ञानता की गाँठ को खोलने के लिए सद्गुरु की शरण ग्रहण करने की आवश्यकता है। अर्जुन भगवान की बातों को बड़ी बारीकी से समझ

रहा है। इसीलिए वह धीरे-धीरे अपने कर्त्तव्य के प्रति उन्मुख दिख रहा है। जीव अपनी अज्ञानता वश ही शास्त्रीय मर्यादा का एक क्षण के लिए परित्याग कर देता है। किंतु वह परमात्मा कभी भी शास्त्रीय मर्यादा के पालन में ढीले नहीं है। इसी नाते उन्होंने कहा कि – "यदि मैं शास्त्रीय मर्यादा से युक्त कर्मों को न करूँ तो लोक ही भ्रष्ट हो जाय और मैं वर्ण शंकर का करने वाला होऊँ। यही विज्ञान सम्मत ज्ञान है।"

भगवान ने यह भी बताया कि जीव में जो भी सत्व रज एवं तम गुणों के भाव उत्पन्न होते है, सब उन्हीं की प्रेरणा से ही है। किंतु जीव यदि सद्गुरु परायण है तो उसकी हर प्रकार से रक्षा हो जाती है। संसार के सारे कार्यों का कर्त्ता ईश्वर लेकिन वह कर्म में लिप्तायमान नहीं है। यह विज्ञान है। जीव अपने कर्म संस्कार वश विभिन्न गुणों एवं कर्मों में फँस जाता है। जबकि यह ज्ञान के माध्यम से वह समझता है कि इस दृश्य जगत में स्थिर रहने वाली कोई वस्तु नहीं है। जैसे व्यक्ति को प्यास लगती है तो जल पीकर तृप्त होता है। लेकिन कुछ क्षण बाद उसे पुन: प्यास लगती है। यह ज्ञान का प्रतीक है। इसी प्यास को विज्ञान बल बनाना है कि यह दु:ख उत्पन्न ही न हो। जीव कर्मों से बँधा होने के कारण है। कर्म जीव के वासना के अनुसार उत्पन्न होता रहता है। यह विषयों के राग द्वेष के कारण होता है। संसार इसी वासना के कारण मोहित होता है। परमात्मा तीनों गुणों से परे है। जीव की परमात्मा से कैसी तुलना यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। यह जीव परमात्मा का ही अंश है। जैसे–अग्नि से छिटकी आग की चिनगारी होती है। चिनगारी भी आग ही है। लेकिन चिनगारी का अस्तित्व क्षणिक होता है। वही स्थिति जीव की है। ईश्वर की त्रिगुणमयी माया बड़ी दुष्कर है। परंतु जो पुरुष (जीव) मेरा निरन्तर चिन्तन करता है। वह मेरी माया का उलंघन कर जाता है। अपने भक्तों की विभिन्न श्रेणियों को बताते हुए कहते हैं कि –

चतुर्विधा भजन्ते मां जना सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमां स च मम प्रियो।।

इन भक्तों में ज्ञानी मेरे विज्ञान को समझता है। इसलिए वह मुझे प्रिय है। यद्यपि अन्य भक्त भी मेरी प्रेरणा से ही कार्य करते है। किंतु उनके भजन में कहीं न कहीं वासना लगी रहती है। ऐसा भजना सकाम भजन है। ज्ञानी इस संसार में सब वासुदेव को, वासुदेव का तथा स्वयं को वासुदेव के लिए मानकर भजन करता है। यह विज्ञान है। इसीलिए प्रत्येक जीव को इसी प्रकार का भजन करना चाहिए।

यद्यपि संसारी जीव इस संसार में अनेक प्रकार के देवी देवताओं की पूजा करते हैं। यह पूजा सकाम वृत्ति का परिणाम है। परमात्मा इसी वृत्ति को उसी देवता में पुष्ट कर देता है।

जिससे उसमें ही उसकी श्रद्धा हो जाती है। जीव अपनी ही तरह परमात्मा को जन्म मरण वाला समझता है। जबकि जीव का भी रूपान्तरण ही होता है। गीता में भगवान ने कहा है कि जीव पुराने वस्त्र को छोड़कर नये वस्त्र को धारण करता है उसी प्रकार शरीर पुराना होने पर आत्मा शरीर छोड़कर नया धारण करता है। यही ज्ञान से विज्ञान का रहस्य है। भगवान ने अर्जुन को समझाते हुए कहा कि जो पुरुष श्रेष्ठ आचरण करते हुए अपने पाप को नष्ट कर देता है, वे राग, द्वेषादि द्वन्द्व रूप मोह से मुक्त हुआ और दृढ़ निश्चय वाले पुरुष मेरे को सब प्रकार से भजते हुए, मेरे शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए प्रयत्न करते हैं। वे ही अध्यात्म के रहस्यमयी विज्ञान की गुत्थी को समझते हुए सम्पूर्ण कर्म को करते हुए मुझको भजते हैं। वे अन्तत: मुझे प्राप्त हो जाता है।

इसलिए साधक को चाहिए कि व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कर्मों को उसी परमात्मा का ही कर्म मानकर कर्तापन के भाव से कार्य को करते जाना ही श्रेयस्कर है। यही ज्ञान विज्ञान रूपी योग है। इस रहस्य को समझना ही साधक का धर्म है। इसीलिए संतों ने ज्ञान को विज्ञान वत समझ कर संसार को जिया है। जिससे उन्हें किसी प्रकार की बाधा नहीं सताती है।

सर्वत्र ईश्वर की छवि निहारते रहना ज्ञानयोग है। निश्चल भाव से अपने को ईश्वर के हाथ सौंप देना भक्तियोग है और ईश्वर–भाव से सभी प्राणियों के कल्याण के लिए निष्काम कर्म करते रहना कर्मयोग है। यह तभी संभव है जब अन्तरात्मा के दिव्यसूत्र में बुद्धि, मन और इन्द्रियों को गूँथ दिया जाय। ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण समस्त प्राणियों के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं। अत: मन के द्वारा विषयों, धन एवं प्रभुत्व की आसक्ति का मानसिक त्याग कर पूर्ण समर्पण भाव सेहृदयस्थ परमात्मा का चिन्तन एव आश्रय ग्रहण करने से शाश्वत् शान्ति सुलभ होगी।

"असंयतात्मन योगो दुष्प्राय इति से ..."

रामेश्वर खण्डेलवाल, गंगापुर सिटी

"जिसका मन पूरा वश में नहीं है, उसके द्वारा योग प्राप्त होना कठिन है।"

भगवान श्री कृष्ण गीता में कह रहे हैं कि हे अर्जुन जिसका मन वश में नहीं है, उसके द्वारा योग सिद्ध होना कठिन है। कारण कि योग की सिद्धि में मन का वश में नहीं होना पूर्ण बाधक है। ध्यान योगी साधक को अपना मन वश में रखना है। मन का चंचल होना योग में जितना बाधक नहीं है, जितना बाधक है मन का वश में न होना। मन का वश में होना बहुत ही जरूरी है। जिसका मन वश में होता है वह जहाँ चाहे अपने मन को स्थिर कर सकता है उसके लिए मन को अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ लगाने की शक्ति प्राप्त है। वही मनुष्य योग को प्राप्त कर सकता है।

ध्यान योग में अर्जुन ने मन की चंचलता को बाधक माना है और उसको रोकना वायु को रोकने की तरह असम्भव बताया है। इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने मन के निग्रह के लिए अभ्यास और वैराग्य ये दो उपाय बताये हैं। इन दोनों में 'अभ्यास' मुख्य है। वैराग्य ज्ञान योग के लिए विशेष उपयोगी होता है। 'अभ्यास' का मतलब मन को बार-बार अपने ध्येय में लगाना। जैसे स्कूली बालक अपनी परीक्षा की तैयारी के लिए अपने को पूर्णतया पढ़ाई में लगा देता है वैसे ही साधक को भी योग प्राप्ति के लिए अभ्यास की पूर्ण जरूरत है। इसकी सिद्धि के लिए लम्बे समय तक साधना करनी होगी। पूर्ण लगन से पूर्ण श्रद्धा से नित्य नियम पूर्वक सही समय निश्चित स्थान पर बैठ कर साधना करनी होगी।

प्राय: साधक में यह प्रवृत्ति होती है कि वे साधना तो श्रद्धा पूर्वक करते हैं परन्तु प्रयत्न में शिथिलता रहती है। दस दिन साधना की पाँच दिन बन्द कर दी। इस तरह की लापरवाही करते रहने पर उसका परिणाम शून्य ही रहता है। कई साधक कई महिनों तक साधना करने के बाद छोड़ देते हैं वे कहते हैं हमें तो इससे कोई लाभ नजर नहीं आया। हमारा घर-गृहस्थी का जो कार्य होना था, वो नहीं हुआ। रोजगार में लाभ नहीं हुआ कहीं नौकरी नहीं लगी। वे साधन इस साधना को अपने स्वार्थ लाभ की दृष्टि से तोलते हैं। वे नहीं समझते कि योग सिद्ध करना कितनी बड़ी उपलब्धि है। योग सिद्ध होने पर सांसारिक कार्य तो मात्र संकल्प से ही पूरे हो जाते हैं। इस तरह व्यावसायिक बुद्धि लगा कर अपनी साधना बीच में ही छोड़ देते हैं। अपनी साधना को अविरल, निरन्तर नियम पूर्वक श्रद्धा के साथ दैनिक कार्य, जो भी हमारे जरूरी कार्य होते हैं, नित्य उपयोगी कर्म जो हम करते हैं उनमें ही इस साधना को सम्मिलित करना है। जैसे रोज स्नान करते हैं, नाश्ता, चाय, खाना इत्यादि जो कर्म करते हैं वैसे ही इसको भी नित्य

के कर्मों को शामिल करना है। जैसे भोजन शरीर के लिए अत्यावश्यक है ठीक इसी तरह भजन भी आत्मा के लिए जरूरी है।

चित्त की चंचलता को रोकने के विषय में भगवान ज्यादा नहीं बोले क्योंकि चित्त को निरूद्ध करना भगवान का ध्येय नहीं। भगवान ने जिस ध्यान का वर्णन किया है वह ध्यान साधन है ध्येय नहीं, भगवान के मत में संसार में जो राग है, यही खास बाधा है। इसको दूर करना ही भगवान का उद्देश्य है। ध्यान तो एक शक्ति है एक पूँजी है जिसका लौकिक परलौकिक सिद्धियों आदि में सम्यक् उपयोग किया जा सकता है। परमात्मा प्राप्ति में मन को एकाग्र करने की इतनी आवश्यकता नहीं जितनी आवश्यकता प्रकृति के कार्य मन से सम्बन्ध विच्छेद करने की, मन से अपनापन हटाने की। साधक के अन्तःकरण में विषय भोगों की रुचि रहने के कारण संयात्मा नहीं हो पाता। मन, इन्द्रियों को अपने वश में नहीं कर पाता इसलिए उनको योग की प्राप्ति में कठिनता होती है।

परंतु जो तत्परता पूर्वक साधन में लगा हुआ है। ध्यान योग की सिद्धि के लिए योग के उपयोगी आहार-विहार, सोना-जागना, आदि नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन करता है, जिसका मन सर्वथा वश में है ऐसे साधक द्वारा योग प्राप्त करना सुलभ है। सबसे पहले अपने आप को यह समझे कि मैं भोगी नहीं योगी हूँ। जिज्ञासु हूँ, साधक हूँ। मेरा काम केवल तत्व को जानना है। जैसे विद्यार्थी का काम उच्चतर शिक्षा ग्रहण करना होता है वैसे ही योग साधक का काम केवल अपनी साधना पर ही होना चाहिए। मैं भगवान का हूँ, भगवान का होना ही केवल मेरा काम है। मैं सेवक हूँ सेवा करना ही मेरा कार्य है। अपनी अहंमता का नाश करना जरूरी है।

जब मन के सारे विकार दूर हो जाते है, राग-द्वेष से परे जब हमारा मन हो जाता है तो निर्मल शुद्ध मन के द्वारा ही हम परमात्मा के समीप होते हैं। संसार में राग रहना, विनाशशील वस्तुओं के प्रति आसक्ति होना ही मन का अशुद्ध होना है। जब साधक अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लेता है कि मुझे तो केवल परमात्मा की प्राप्ति करना है तो सांसारिक वस्तुओं से उसका राग अपने आप हटने लग जाता है।

व्यवहार में भी साधक यह सावधानी रखे कि हमारे द्वारा किसी का अहित न हो। किसी के मन को दुःख न पहुँचे। किसी का पराया हक पर अधिकार न करें। दूसरों के साथ छल करना, दूसरों के प्रति बुरे विचार रख कर उनका बुरा करना आदि ऐसे कई कारण है जिनके द्वारा मन दूषित होता है।

गुरु चन्द्रमोहन शताब्दी उत्सव

मोती राम गर्ग, अलूपुर

अलूपुर की गलियों में ऐसा स्वर्ग का नजारा है।
दुनिया वाले क्या जानें, सीधा मोक्ष का द्वारा है।।

(1) कन्हैया जैसे बृज में, बाल क्रीड़ा थे करते।
ग्वालों के संग संग में, माखन चोरी करते।।
कभी छिपते इधर उधर, भाग भाग कर फिरते।
एक दौड़ता एक पकड़ता, ऐसी लीला करते।।
ऐसे अपने बाल जीवन में, चन्द्र मोहन भी करते।
एक दूजे को हाथ लगा कर, लुकते और छिपते।
थोड़े दिनों में यूवा हो कर, भक्ति की बातें करते।।
बच्चों बूढ़ों को योग सिखाया, मोहन सबका प्यारा है।
दुनिया वाले क्या जानें.....

(2) सन् 1909 ग्राम अलूपुर में, एक ऐसा फूल खिला।
चारों ओर प्रकाश हुआ, ज्यों आसमां में चाँद खिला।।
पं. देबी राम ने अपने पुत्र का, चन्द्र मोहन नाम दिया।
जगमग जगमग हुई ग्राम में,करते जय जय कार।।
पं. देबी रामघर पुत्र जन्मा, योग का है अवतार।
अलूपुर ग्राम के भाग जागे, जो ब्रह्म का है अवतार।।
चंदा और सूरज की तरह, आसमां का तारा है।
दुनिया वाले क्या जानें.....

(3) गुरु चन्द्र मोहन से योगी करते दुनिया का कल्याण।
योग का प्रचार करते थे वे , थे साधू समान।।

छत के ऊपर शिष्य बैठकर, हरि बोल हरि बोल।
केशव माधव गोविन्द, राधे राधे बोल।
जोर जोर से करते कीर्तन थे, करते प्रभूजी का गुणगान ।।
प्रभू जी का दिव्य कीर्तन सब भगतों को प्यारा है।
दुनिया वाले क्या जानें.....

(4) इस ग्राम की महिमा सारे भारत में है छाई।
देव लोगों ने मिल कर, स्वर्ग से दुंदुभि बजाई।।
गुरु चन्द्र मोहन की प्रतिमा अद्भुत एक बनाई।
सत्संग भवन में गुरु जी की, सारी लीला है दर्शाई।।
दशहरे के दिन यहाँ गुरुदेव का जन्म मनाते।
पूजन सत्संग कर करके, खूब मिठाई खाते।।
जन्म शताब्दी पर गुरुजी की, गलियों में झांकी आई।
शोभा इसकी देख देख कर, सब नाचे लोग लुगाई।।
कह मोती राम बाला होगा, जब घटा ऊमड़ कर आई।
काली घटा में चमके बिजुरिया, ज्यूं सूरज का उजियारा है।।
दुनिया वाले क्या जानें सीधा मोक्ष का द्वारा है।
अलूपुर की गलियों में ऐसा स्वर्ग का नजारा है।।

कामाख्या की यात्रा में सत्संग लाभ

डा. विजय सिंह

यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि ट्रेन के गति से मुझे मानसिक शांति मिलती है। बाहर पल-पल बदलते परिदृश्य जगत एवं स्वयं के परिवर्तन का भान कराने लगते है। श्री सद्गुरु भगवान का चेतावनी भरा कथन है- "रहना नहीं यह देश बेगाना है एक दिन सभी को इसे छोड़ कर जाना है। योग साधना द्वारा अपने अस्तित्व की पहचान एवं प्रकृत तथा पुरुष की पहचान हुआ करती है। यह सब विचार स्वागत मन में उठते और तिरोहित होते जा रहे थे।

महानुभाव से वार्तालाप में आनन्द आने के कारण लम्बी यात्रा का समय कैसे व्यतीत होता जा रहा था। इसका हम दोनों को भान नहीं था।

मैंने उनकी ओर उन्मुख होकर कहा- कुण्डलिनी महाशक्ति की चर्चा नाथ सम्प्रदाय (हठयोग) के ग्रंथों में तथा तंत्र सम्बन्धी ग्रंथों में कहीं प्रतीकात्मक और कहीं विस्तार से वर्णित है। ज्ञानेश्वरी में संत ज्ञान देव जी ने भगवत् गीता के श्लोकों की व्याख्या विलक्षण ढंग से किया है। उन्होंने कुण्डलिनी जागरण के स्वानुभूति विवरण दिये है। इस महाशक्ति पर आप कुछ और प्रकाश डालें। मैं सुनना चाहता हूँ।

वे बोले भाई- यह अनुभूति का विषय है। सद्गुरु कृपा से विरले तत्वत महाशक्ति एवं शिव के स्वरूप का कुछ-कुछ संधान कर पाते है। हमारे शरीरस्थ समस्त गति और क्रिया शक्ति का आधार भी कुण्डलिनी से ही संचालित है। मैंने पूछा- जब सामान्य जन में इसे आपने सुप्त अवस्था में होना बताया तो फिर बाह्य गति और क्रिया शक्ति का आधार कुण्डलिनी ही है यह कैसे कहा जा सकता है?

जागृत कुण्डलिनी से अतिन्द्रीय बोध एवं आध्यात्मिक जगत में जीव प्रवेश करता है। महाशक्ति के सुप्त अवस्था में भी अल्पस्पंदन से यह बाह्य प्राण शक्ति अवस्थित रहता है जिससे जीव बाह्य क्रिया-शक्ति से सम्पन्न होता है।

भाई! यह अत्यन्त गूढ़ विषय है। हम शास्त्रीय बात ही यहाँ आपको बता रहे है। महाशक्ति कुण्डलिनि का स्थान सभी मनुष्यों के मेरूदण्ड में इड़ा-पिंगला नामक दो नाड़ियों है। इनके मध्य अति सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी है। इस नाड़ी के निम्नस्थ भाग में चतुर्दल त्रिकोणाकार एक कमल है। इस कमल पर कुण्डली कृत सर्पणी की तरह कुण्डलिनि स्थित है।

सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया।
अस्वित् संधि संस्थाना वाग्देवी बीज संज्ञका।।

मैंने अर्थ बताने को कहा तो वे बोले– सर्प तुल्य यह कुण्डलिनि शक्ति कन्दस्थल में निद्रित रहती है, परंतु अपनी दीप्ति से स्वयं प्रकाशित है। वह सर्प के समान रहने वाली वाणी की अधिष्ठात्रि वाग्देवी है।

बताया गया है कि–

ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोर्निर्भया स्वर्गभास्वरा।
सत्वं रजस्तमश्चेतिं गुण त्रय प्रसूतिका।।

यह परमात्मा की शक्ति है। यह अभया तथा स्वर्ण के तुल्य दीप्तिमयी है और सत्व–रज तथा तमोगुणों की प्रसूति है।

साधक, श्री सद्गुरु कृपा से कुण्डलिनी को जाग्रत कर सुषुम्ना नाड़ी में प्राण प्रवेश कराता हुआ षटचक्रों को भेदन कर सहस्त्रार में स्थिर तीनों गुणों, तीनों तापों तथा तीनों ऋण से मुक्त हुआ। ईश्वरवत प्रकाशित होता है। शरीरस्थ मेरुदण्ड में, हठयोग प्रधान ग्रंथों में छ: चक्रों का तथा अन्य योग ग्रंथों में सात चक्रों का विवरण मिलता है।

यथार्थत: इन चक्रों में कुण्डलिनी के सुप्त दीप्ति का स्पन्दन अत्यन्त नगण्य रहा करता है। परंतु सद्गुरु कृपा एवं योगाभ्यास द्वारा ज्यों–ज्यों कुण्डलिनी सुषुम्ना का आश्रय ले इन चक्रों का भेदन करती है वैसे–वैसे साधक में महाभूतों का ज्ञान एवं विज्ञान हस्तगत होता जाता है। जीव पशु रूप है, उसे अपने पशुपति स्व रूप में अवस्थान हेतु योगाभ्यास द्वारा इन चक्रों में आगुण्ठित, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, चित्त एवं आनन्द के सीमित दायरे को अपरिमितता, परम स्वातंत्र्य एवं अनन्तत्व विस्तार मिलता है।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा चक्र ये छ चक्र योग ग्रंथों में बताये गये है। एक श्लोक में इन चक्रों के अधिष्ठात्रि देव एवं उनकी शक्तियों का विवरण दिया गया है।

गणेश्वरो विधिर्विष्णु: शिवो जीवोगुरुस्तथा।
षडेते हंस तामेत्य मूला धारादिषु स्थिता:।।

क्रमश: मूलाधार में भगवान गणपति, स्वाधिष्ठान में ब्रह्मा, मणिपूरक में भगवान विष्णु, अनाहत में भगवान शंकर विशुद्ध चक्र में जीवात्मा और आज्ञा चक्र में गुरुदेव का स्थान बताया गया है।

मैंने कहा कृपया इन चक्रों के विशेष वर्णन यदि ज्ञात हो तो मुझे बतायें।

स्मितहास के साथ वे बोले– यह सब शास्त्र ग्रंथों में विस्तार से कहीं–कहीं थोड़ी भिन्नता से भी वर्णन है। वास्तव में चक्रों में जिन देवों का नाम यहाँ बताया है। वे सभी वीतरागी त्रैलोक्य शक्ति सम्पन्न देव हैं। भगवान पातंजलि के योग दर्शन में इन सब बातों का उल्लेख नहीं मिलता परंतु सूत्रों में जैसे "वीतराग विषय वा चित्तम्" द्वारा समाधि प्राप्त करने के जो

उपाय बताये हैं। उन्हीं वीतरागी देवों का इन चक्रों में धारणा, ध्यान एवं समाधि रूपी संयम द्वारा साधक तत् चक्रों के देवों में लयता प्राप्त करके उनके विशेष–विशेष शक्तियों का मालिक बन जाता है।

संक्षेप में बतलाऊँ, मूलाधार में पीत वर्ण चतुर्दल कमलासन पर भगवान गणपति ऋद्धि–सिद्धि समेत विद्यमान हैं। उनकी अलौकिक शोभा वर्णनातीत है। उनके चारों हाथों में त्रिशूल, चक्र, पद्म और मोदक है। सद्गुरु कृपा से श्री गणपति जी के स्वरूप में पूर्ण लयता प्राप्त कर साधक श्री गणपति जी के बल ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार छः दलों वाले रक्त वर्ण कमल के आसन पर श्री ब्रह्माजी चतुर्भुज दिव्य रूप में विराजमान हैं। उनके चारों भुजाओं में चार वेद सुशोभित हैं। वीणा वादनी भगवती सरस्वती अलौकिक तेज युक्त वामांगी हैं। निश्चित ही श्री ब्रह्मा जी में लयता प्राप्त योगी श्री ब्रह्मा जी के बल, ऐश्वर्य वाला हो जाता है।

मणिपूरक, नाभि के पीछे मेरुदण्ड में आलोकित है दस दल वाले कमलासन पर भगवान विष्णु जी एवं उनकी शक्ति भगवती लक्ष्मी जी अपरमित तेज के साथ यहाँ विराजते हैं। चक्र सिद्ध होने पर योगी भगवान विष्णु के स्वरूप में लय उनके विशेष बल ऐश्वर्य का मालिक बन जाता है।

अनाहत चक्र, मेरुदण्ड में हृदय के पीछे बारह दलों वाला रक्त वर्ण कमल है। उस पर भगवान शिव पद्मासन पर बाघम्बर धारी अलौकिक तेज सम्पन्न समाधिष्ठ हैं। सर्प गले में शोभायमान है। भगवती उमा दिव्य रूप में विराजमान हैं। सद्गुरु कृपा से योगी अनाहत चक्र को सिद्ध कर शिव स्वरूप हो जाता है।

कण्ठ प्रदेश में जहाँ छोटा गड्ढा है उसके पीछे मेरुदण्ड में विशुद्ध चक्र बताया गया है। यह सोलह दलों का स्वर्ण वर्ण कमल पर अंगुष्ठ मात्र दिव्य चेतन आत्मा का दर्शन करके योगी जन्म–मरण रूपी दुःख सागर से छूट जाता है।

आज्ञा चक्र, दोनों भुजों के मध्य में जहाँ तिलक लगाया जाता है, उस स्थान में दो दलों वाला श्वेत कमल है। इस पर विश्वनाथ शक्ति सहित विराजते हैं। यही त्रिवेणी है जहाँ ईड़ा, पिंगला और सुषम्ना का मेल होता है। शिव संहिता में आज्ञा चक्र की महत्ता बताते हुए भगवान शिव कहते हैं–

यानि यानीह प्रोक्तानि पञ्चपदमें फलानि वै।
तानि सर्वाणि सुतरागे तज्ज्ञानम्भवन्तिहि।।

अर्थात् मूलाधार से लेकर विशुद्ध चक्र तक सिद्ध करने से जो फल प्राप्त होता है वह सब आज्ञा चक्र के सिद्ध करने से मिल जाता है।

सहस्त्रार का स्थान सुषम्ना का सर्वोच्च मुख चोटी से थोड़ा नीचे खुलता है। सहस्त्र दल कमल कोटि सूर्यों के प्रकाश के सदृश प्रकाशमान है। त्रिगुणातीत परब्रह्म, स्वरूप श्री

सद्गुरु देव यहाँ विराजमान हैं। महा कारुणिक जीवों सर्व कलिमल को हरने वाले हैं।

"गुरुरूपी स्वयं कृष्णः शिष्याणां हित काम्यया"

अपने शिष्यों के हितार्थ कल्याणार्थ यहाँ श्री कृष्ण ही गुरु रूप हैं। इसीलिए "वन्दे कृष्णं जगद्गुरुम्" ऐसा कहा गया है। यह सब बताकर वे आँखे बन्द कर मौन हुए।

एक साधक के उदगार

प्रभो! मेरे स्वामी! तुम्हारे सिवा और कौन है जो मेरे हृदय की वेदना को जानता है और जिसके सामने मैं हृदय की बात संकोच छोड़कर कह सकूँ। संसार का सेवन करते–करते—इन संसारी प्राणी–पदार्थों की गुलामी करते–करते—मिथ्या अनुकूल परिस्थिति की प्रतीक्षा करते–करते मैं अब तो थक गया—सर्वथा निराश हो गया। अब मेरा मन न इनका आश्रय चाहता है, न इनकी हाँ–में–हाँ मिलाना चाहता है और न इनका संग ही सहन कर सकता है। अब तो मैं इनके बन्धन से नित्य मुक्त होकर मेरे सरकार! तुम्हारे पद–पदम–मधु का ही मधुकर बनना, बना रहना—नित्य–निरन्तर अनन्त काल तक बना रहना चाहता हूँ। मेरी यह अभिलाषा पूर्ण कीजिए–मेरे प्रभो! यह तुम्हारे ही किये होगा, तुम्ही करोगे ही। इसमें बाधा पहुँचाने वाला जो कुछ भी दोष मेरे जीवन में हो, उसे तुम नष्ट कर दो और मुझे अपने योग्य बना लो। मैं केवल और केवल तुम्हीं को चाहता हूँ और तुम्हारी ही अहैतुकी अमोघ कृपा का मुझे बल–भरोसा है। जिनके अप्रतिम बल से ही सबको बल मिलता है, मैंने उन्हीं परम पावन अभय चरणयुगलों का आश्रय ले लिया है। इससे अब मेरे मन में कोई भी भय चिन्ता, निराशा, निर्बलता नहीं है। मेरा विश्वास है–दृढ़ विश्वास है; मैं तुमको, तुम्हारे चरणों को अवश्य प्राप्त करूँगा, तुम्हारे ही कृपा–बलपर! वे तो मुझे प्राप्त ही हैं। मेरी अन्धी आँखें देख नहीं पा रही हैं। तुम्हीं उन आँखों को खोलकर मुझे अपने चरण–दर्शन करा दो और तुम्ही मुझको सदा के लिए उन अरणकमलों का चंचरीक बना रखो–मेरे प्रियतम प्रभो!

नाम जप महिमा

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब, जि. सिरमौर (हि.प्र.)

असार जगत में नाम की बड़ी महिमा है। वेद-पुराणों में भी नाम और नामों की चर्चा कई जगह की गई है। महाराजा "हरिश्चन्द्र" सत्यवादी, सूर्यवंशी राजा थे। वह सत्य के लिए जाने जाते थे। आज भी उनका नाम बड़ी श्रद्धा और प्रेम के साथ याद किया जाता है। भगवान राम जब सेना पार कराने के लिए सागर पर सेतु बनाने की मन्त्रणा कर रहे थे-

सुनहु भानु कुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ राम सब सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं।।

(लंकाकाण्ड, 3 सोरठा)

अर्थात् जाम्बवान् ने हाथ जोड़कर कहा- हे सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप श्री रामचन्द्र जी, सुनिये! हे नाथ! सबसे बड़ा सेतु तो आपका नाम ही है, जिस पर चढ़कर (जिसका आश्रय लेकर) मनुष्य संसार रूपी समुद्र से पार हो जाते हैं। अतः नल और नील तथा वानरों के सहयोग से सेतु का निर्माण किया जाने लगा। कैसी विचित्र करामात थी कि जो पत्थर स्वयं पानी में डूब जाते हैं तथा दूसरों को भी डुबो देते हैं, वही पत्थर, प्रभु के नाम के प्रताप से सागर में तैरने लगे। यथा

श्री रघुवीर प्रताप ते सिन्धु तरे पाषान।
ते मति मंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन।।

(लंकाकाण्ड, दोहा-3)

श्री रघुवीर के नाम के प्रताप से पत्थर समुद्र पर तैरने लगे। ऐसे श्री रामजी को छोड़कर जो मनुष्य किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं, वे निश्चय ही मन्द बुद्धि हैं। इसीलिए कहा गया है, **राम से बड़ा "राम का नाम"**। हनुमान जी पत्थर श्री राम, श्री राम कहकर फेंकते जाते थे तथा पत्थर पानी के ऊपर तैर रहे थे, भगवान श्री राम बड़े प्रेम से देख रहे थे। श्री राम ने हनुमान जी से कहा, हनुमान तुम जो पत्थर फेंक रहे हो, वह पानी पर तैर रहे हैं, हनुमान जी ने कहा, प्रभु यह सब आपके नाम की महिमा है। इस तरह श्री राम ने भी एक पत्थर पानी में छोड़ दिया, वह पत्थर सागर के पानी में डूब गया। श्री राम, हनुमान जी की तरफ देखकर मुस्कराने लगे। श्री हनुमान जी दोनों हाथ जोड़कर श्री राम जी से विनती करते हुए बोले, प्रभु! जिसे आप छोड़ देंगे, वह तो डूबेगा ही। इसी लिए कहा गया है- "नामी से बड़ा नामी का नाम" अतः नामी श्रीराम जी से "राम राम" नाम अति महान है।

वास्तव में विचार करके देखा जाय, तो व्यक्ति से व्यक्ति का नाम ही बड़ा समझा जाता है, क्योंकि व्यक्ति तो शरीर है जबकि नाम शरीर का है। अत: शरीर नाशवान है परंतु नाम अजर-अमर है। नाम शरीर के साथ नहीं जाता। नाम तो शरीर का व्यक्तित्व है। व्यक्ति के मृत्युपरान्त भी नाम बना रहता है। व्यक्ति एक गुण है। गुण, अच्छा या बुरा हो सकता है। अत: मनुष्य की मृत्यु के बाद भी लोग अकसर कहा करते हैं कि वह भला आदमी था तथा बुरे मनुष्य के अवगुणों को गा-गाकर याद किया जाता है। अत: नाम की महिमा है जो नष्ट नहीं होती। नाम "अक्षरों" से मिलकर बनता है। अत: बीजाक्षर हैं। बीजाक्षर व्यक्तित्व को बतलाते हैं। अक्षरों को समुचित व्यवस्थित करने पर सार्थक शब्द बनते हैं तथा अव्यवस्थित करने पर निरर्थक शब्द बन जाया करते हैं। भगवान का सार्थक अर्थ है। भग के द्वारा जो नहीं आता उसे भगवान कहा है। अगर इसे भवानग या भनगवा कर दें तो इसका कोई मतलब नहीं निकलता है अत: शब्द निरर्थक बन जाता है। इसी तरह देवी, देवताओं के व्यक्तित्व को दर्शाने वाले बीजाक्षर ही तो मंत्र रूप में प्रयुक्त होते हैं। "श्री" लक्ष्मीजी के लिए, "ऐं" श्री दुर्गा देवी के लिए, "क्लीं" कामराज के लिए तथा "ह्रीं" मायाबीज के रूप में प्रयुक्त होता है। "हरि" श्री हरि, विष्णु जी तथा "हर" भगवान शिव के लिए बोला जाता है। अत: ये बीजाक्षर देवताओं के व्यक्तित्व, सामर्थ, पहचान को निर्देशित करते हैं। इन बीजमन्त्रों से देव याद किये जाते हैं तभी उनकी करूण कृपायें हमारे ऊपर हुआ करती हैं। गलत नाम लेने पर कोई व्यक्ति नहीं सुनता उसी प्रकार बीजाक्षरों का गलत उच्चारण करने पर देवी की कृपायें नहीं मिला करती। मंत्रों में अतिलुलित शक्तियाँ होती हैं। मंत्रों में उस देव या ईश्वर का व्यक्तित्व, सामर्थ, पराक्रम, यश, शक्ति, सिद्धि समहित होती है, इसीलिए मंत्रों का बार-बार उच्चारण करने पर देवगण/ईश्वर हमें अपनी उक्त शक्तियों का कुछ अंश दे दिया करते हैं। साधक सदैव अपने इष्टों के भिखारी होते हैं। मनुष्य देवताओं की कृपा पर ही तो निर्भर है। सब जगह नाम की ही महिमा है। यथा-

ब्रह्म राम ते नामु बड़ बर दायक बर दानि।
राम चरित सत कोटि महँ लिय महेश जिय जानि।।

(बालकाण्ड दोहा-25)

अर्थात् नाम निर्गुण तथा सगुण ब्रह्म, "राम" दोनों से बड़ा है। यह वरदान देने वालों को भी वर देने वाला है। श्री शिव जी ने अपने हृदय में यह जानकर ही सौ करोड़ रामचरित्र में से इस "राम" नाम को साररूप से ग्रहण किया है। तथा-

नाम प्रसाद संभु अविनासी। साजु अमंगल मंगल रासी।।
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी।।

(चौ.-1, पहला विश्राम)

नाम के प्रसाद से शिवजी अविनाशी हैं और अमंगलवेष वाले होने पर भी मंगल की

राशि हैं। शुकदेव जी और सनकादि सिद्ध मुनि, योगीगण, नाम के ही प्रसाद से ब्रह्मानन्द को भोगते हैं। श्री नारद जी ने प्रहलाद को श्री हरि के नाम जप की ही दीक्षा दी तथा प्रहलाद भक्त शिरोमणि बन गये उसी प्रकार–

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊं। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।

(बालकाण्ड, ध. दि. चौ. 4)

विमाता से दुःखी होकर सकाम भाव से भक्त ध्रुव ने श्री हरि नाम का जप आरंभ किया तथा आलौकिक 'ध्रुव' लोक प्राप्त किया जो आज भी अन्तरिक्ष में स्थिर रूप से चमकता है। श्री हनुमान ने पवित्र राम नाम का स्मरण करके श्री राजा राम को अपने वश में कर रखा है। नीच अजामिल गज और गणिका (वेश्या) भी श्री हरि के नाम के प्रभाव से मुक्त हो गये। अतः मैं नाम की बड़ाई कहाँ तक करूँ, 'राम' भी स्वयं नाम के गुणों को नहीं गा सकते। अतः कलयुग में राम का नाम कल्पतरु (मनचाहाफल देने वाला) वृक्ष है मुक्ति का घर है जिसे जपने से मानव पाप रहित हो जाता है। चारों युगों में,तीन कालों में, तीनों लोकों में नाम का जप कर जीव शोक रहित हुए है। वेद, पुराण और संतों का मत यही है कि समस्त पुण्यों का फल श्री राम के नाम जप में समाहित है, इसलिए तुलसीदास ने कहा है–

कलयुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिर नर उतरहि पारा।।

अतः कलयुग में मनुष्य केवल 'राम नाम' जपकर ही भव सागर से पार हो सकते है। पूर्व सत्युग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से और द्वापर युग में पूजा पाठ से भगवान प्रसन्न होते है, परंतु कलियुग में केवल पाप की जड़ और मलिन है, इसमें मनुष्यों का 'मन' पाप रूपी समुद्र में मछली बना हुआ है। इससे ध्यान, यज्ञ और पूजन नहीं बन पाते। अतः कलियुग में राम नाम स्मरण मात्र से परलोक अर्थात परमात्मा का परम धाम प्राप्त कर सकता है। कलियुग में न भक्ति है, न कर्म है और न ही है, राम नाम ही एक आधार है। यथा–

कलियुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा।

(उत्तर काण्ड)

अर्थात् कलयुग में मनुष्य केवल हरि' की गुण गाथाओं का गान करके ही भव सागर की थाह पा सकते हैं। मनुष्य को कलियुग में मानसिक पाप भी नहीं लगते हैं। अतः कलियुग में नाम जप की महानता है।

ध्यान इस बात पर देना चाहिए कि नाम जप कैसे किया जाये। भगवान का नाम जप करते समय अपनी कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों, मन तथा बुद्धि को एकाग्र करके ही नाम जप

आरम्भ किया जाये तभी सच्चे परिणाम की प्राप्ति संभव है। जिस प्रकार रोगी के लिए प्रयोग करते समय में परहेज की आवश्यकतायें होतीं हैं उसी प्रकार नाम जप करने साधकों को निम्न दस नामापराधों से आवश्यक है। परहेज बिगाड़ने से, कुपथ्य से जैसे बढ़ने का भय हो जाया करता है। दस अपराधों से बचकर नाम जप पूर्ण होने पर करोड़ों का फल स्वत: ही मिल जाता है।

सान्निन्दासतिनामवैभव कथा श्रीशेशयोर्भेदधीर,
श्रद्धा गुरु शास्त्र वेद वचने नान्यार्थवादभ्रम:।
नामास्तीतिनिषिद्ध वृत्ति विहित त्यागैहि धर्मान्तरै:,
साम्यं नाम जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश।।

(गायत्री साधना गु वि., 5

1. सनिन्दा 2. असति नाम वैभव कथा 3. श्री शेशयोर्भेदधी: 4. अश्रद्धागुरुवचने शास्त्र–वचने 6. वेद वचने 7. नान्यार्थवादभ्रम: 8. नामास्तीति निषिद्ध वृत्ति 9. विहित त्याग धर्मान्तरसाम्यम्। इनका विवरण इस प्रकार है। इन्हें त्यागने मात्र से करोड़ो गुणा फल होता

1. **सद्निन्दा–** मनुष्य अपनी कमजोरी छिपाने के लिए कभी–कभी सन्तजनों सच्चे मार्ग पर चलने वालों की, सत्पुरुषों की अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर निन्दा करने ल है, उसे ही 'सनिन्दा' कहा जाता है। हर हालत में हमें सत्यता की प्रशंसा करनी चाहिए। श अगर सही कार्य कर रहा है तो उसे सत्य ही कहना उचित है।

2. **असतिनाम वैभव कथा–** आपने देखा होगा कभी–कभी, झूठे, पाख अत्याचारी, व्यभिचारी व्यक्ति अपने बाहुबल अथवा मूर्खता के आधार पर बड़े कहलाने ल है। अत: उनके वैभव, चमक, दमक से आकर्षित होकर उनकी झूठी प्रशंसा करना निन्दनीय असत्य को सत्य नहीं माना जा सकता। अत: असत्य की निन्दा करना उचित ही है। अ ऐसा करने से आपकी देखा देखी से अन्य लोग भी आपका अनुकरण करने लगेंगे जो स अनुचित होगा। इसे ही 'असतिनाम् वैभव' कहा है।

3. **श्री शेशयोर्भेदधी–** परमात्मा सर्वव्यापी एक है अत: देवों में भेद करना उचित है। अत: भगवान श्री हरि विष्णु, शिव जी, तथा अन्य देवता सब एक ही परमात्मा के वि शक्तियों वाले अलग–अलग रूप में हैं। अत: किसी भ्रम में नहीं रहनी चाहिए। पृथक–पृथक देव मानना उचित नहीं है।

4. **अश्रद्धा गुरुवचने–** श्री सद्गुरु के वचनों में भूलकर भी कभी अश्रद्धा नहीं र चाहिए। गुरु की कभी परोक्ष में भी बुराई न करें। गुरु के प्रति उदासीन भाव न रखें। अपना कल्याण चाहें तो सदैव गुरु के वचनों का अनुगमन करें। गुरु द्वारा बतलाये गये मा अनुसरण करें। कभी विरोध न करें। गुरु नाम का जप करें या गुरु मंत्र का, फल समा

मिलेगा।

5. अश्रद्धाशास्त्रवचने– हमारा हिन्दू धर्म सनातन है। हमारे अनेकों धर्मग्रन्थ हैं। वेदों में, पुराणों में, शास्त्रों में जो कहा गया है, बड़े शोध के साथ ही निचोड़ हमारे ऋषियों ने लिखा है, अतः उन पर विश्वास करें तथा कभी निन्दा तथा अश्रद्धा न करें। वे सन्त बड़े दूरदर्शी, धर्म शास्त्रों, तत्वदर्शी तथा धर्मविद् थे। लोक हितकारी सद्ववचनों में अपनी अटूट श्रद्धा रखें।

6. अश्रद्धावेदवचने– वेदों में अथाह ज्ञान का भण्डार भरा पड़ा है। उनमें जीवन से सम्बन्धित रहस्य, ज्ञान, विज्ञान, रक्षा कौशल, जीवन रहस्य, जीवन रक्षा के उपाय इत्यादि के बारे में सविस्तार वर्णन है। ज्ञानपूर्ण, सद्बुद्धि पूर्ण वचनों में अश्रद्धा रखना पाप है। वेद, सत्यता और ज्ञान के रहस्यों से भरे पड़े हैं। अतः वेदों में पूर्ण विश्वास रखना ही मानव को कल्याणकारी है। वेद स्वयं ब्रह्मा जी के मुखों से निकले हैं। ऋग्वेद पूर्व मुख, यजुर्वेद उत्तर मुख, सामवेद पश्चिम मुख तथा अथर्ववेद दक्षिण मुख से निकले बताये गये हैं।

7. नाम्न्यर्थवाद भ्रम :– नाम के अर्थवाद में भ्रम रखना ही नाम्न्यर्थवाद भ्रम है। ईश्वर के अनन्त नाम हैं, उनके अर्थों में भिन्नता करना उचित नहीं है। गोपाल, कृष्ण, मुरलीधर, वंशी वाले, यशोदानन्दन, राम, रघुनाथ दीनबन्धु, गौड तथा अल्लाह आदि उस परमात्मा के अनेकों नाम हैं। इनके अर्थों के तत्वों में भिन्नता का भ्रम होता है, यह उचित नहीं है। उस परमात्मा के किसी नाम में भ्रम नहीं रखना चाहिए। यह भिन्नता स्थान के कारण, भाषा के कारण, रीति रिवाज के कारण हो सकती है। जैसे हिन्दू समाज भगवान को 'प्रभु, परमात्मा, परमेश्वर' आदि अनेकों नामों से पुकारता है, मुसलिम समाज उसे 'अल्लाह' तथा ईसाई लोग उसे 'गौड' इत्यादि के नामों से पुकारते हैं।

8. नामास्तीति निष्क्रियवृत्ति :– अर्थात् नाम है तो अन्य बातों की क्या आवश्यकता है। ईश्वर का नाम उच्चारण करने मात्र से पाप दूर हो जायेंगे, अतः पाप करने में क्या बुराई है। अक्सर लोगों की धारणा है कि पतित पावनी 'गंगा' में स्नान करने से अनेकों जन्मों के पाप धुल जाते हैं, अतः कुछ विपरीत बुद्धि वाले कहा करते हैं पहले पाप कर लो फिर 'गंगा' में डुबकी लगा लेंगे, अतः हमारे पाप दूर हो जायेंगे। यही अज्ञानता है। परमात्मा निष्पक्ष न्यायाधीश हैं। वह खुशामद करने वाले के न तो पाप क्षमा करता है और न बिना खुशामद करने वाले के पुण्यों को रद्द करता है। कर्मों का यथोचित फल तो हर जीव को भोगना ही पड़ता है। अतः जो प्राणी पाप कर्म करके, पाप नाश की आशाओं में बैठे रहते हैं, वे नामापराध करते हैं।

9. विहित त्याग– अपने उत्तरदायित्व से मुँह छिपाना, कर्त्तव्यों का त्याग, विहित कर्मों का न करना इत्यादि नामापराध हैं। लोग कहते हैं 'संसार मिथ्या है तथा दुनिया झूठी है' इत्यादि। अक्सर लोग अपने कर्त्तव्य कर्मों से मुँह मोड़कर घरबार छोड़कर भाग जाया करते हैं तथा इधर–उधर आवारागर्दी तथा दुर्व्यसनों में व्यस्त रहा करते हैं। यह उचित नहीं है। अतः

प्राणीमात्र को अपने कर्तव्य कर्मों का यथा संभव पालन करना चाहिए तथा ईश्वर का नाम जप करते रहना चाहिए।

10. **धर्मान्तरैः साम्यम्**– धर्म विरुद्ध कर्मों को धर्म समझना भी अपराध है। अनेक सामाजिक कुरीतियाँ जैसे पशुबलि इत्यादि को धर्म की श्रेणी में रखना भी अपराध है। रूढ़ीवाद के कारण अधर्मों को धर्म नहीं मानना चाहिये। सामाजिक असमानता भी इसी श्रेणी में आती है। छुआछूत भी, अधर्म ही है इसे धर्म कदापि नहीं कहा जा सकता। मनुष्य–मनुष्य से घृणा नहीं कर सकता।

अतः इन दश ऋतों से शुद्ध होकर, इन्हें त्यागकर, दशों इन्द्रियों को वश में रखकर सत्य और धर्म से जीवन को ओत–प्रोत बनाते हुए जो लोग, **नाम जप** करते हैं भगवान का मंत्रोच्चार करते हैं, उन्हीं की आत्मा पवित्र होती है तथा वे ही उच्चकोटि के फल प्राप्त करने के भागी हुआ करते हैं। वैसे तो तोता भी राम नाम रटता है पर इससे प्रयोजन सिद्ध नहीं है। यथा–

राम नाम सब कोई कहे, दशऋत कहे न कोय।
एक बार दशऋत कहे, कोटि यज्ञ फल होय।।

अतः साधक को दशऋत अथवा दश नामापराध त्याग कर ही नाम जप करना चाहिए। सिखों के गुरु श्री नानक देव जी महाराज ने स्पष्ट कहा है, यथा–

''नानक नाम जहाज है, चढ़े सो उतरे पार''

अर्थात् नानक जी महाराज कहते हैं कि परमेश्वर का नाम जपने से जीव भव सिन्धु से इसी प्रकार पार लग जाता है जैसे जीव जलपोत में सवार होकर सागर के तट तक पहुँच जाता है। नाम जप से देव स्वयं ही आकर्षित हो जाते हैं कि उन्हें उनका भक्त पुकार रहा है, ठीक वैसे जैसे हम अपने परिजनों को उनके नामों से पुकारते हैं। अगर नाम में कोई त्रुटि न हो, तो जिसे पुकारा जाता है, हमारी तरफ आकर्षित होता है तथा हमारी बातें सुनकर समाधान करता है। वैज्ञानिक दृष्टि कोण से मेरा मानना है कि जैसे आज के कलयुग (मशीनों का समय) में, प्रत्येक मनुष्य के अपने–अपने ई–मेल एड्रेस होते हैं, उसी तरहज सब देवों के भी अपने–अपने नाम के दिव्य ई–मेल एड्रेस होते हैं। अतः जैसे हम मंत्र रूप में या बीजाक्षर रूप में बार–बार जपते हैं, उनसे हमारा सम्बन्ध बन जाता है तथा हमारे अन्तर्मन में स्थित चित्रगुप्त जिनके पास हमारे कर्मों का पूरा भंडार होता है, से पूरी जानकारी देवों/इष्टों को ठीक उसी प्रकार से मिल जाती है जैसे पासवर्ड लगाने से सारा प्रोफाइल/निजी फाइल खुल जाता है। हमारे मन की भावनाओं तथा इच्छाओं के अनुरूप जैसा उन्हें, उचित लगता है, हम पर कृपा करते रहते हैं अथवा हमारी भावनाओं पर ध्यान नहीं देते, क्योंकि हमारे कर्म उस स्तर के नहीं होते हैं।

श्री सिद्धयोग मण्डल दतिया का जन्मशताब्दी समारोह व योग शिविर सम्पन्न

अनिल दुबे, मुड़ियन का कुआं दतिया (म.प्र.)

माँ पीताम्बरा पीठ की पवित्र नगरी दतिया में योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं प्रातः स्मरणीय योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की जन्म शताब्दी के सुअवसर पर चार दिवसीय योग साधना शिविर का आयोजन सिद्धयोग साधक मण्डल दतिया के समस्त गुरुभाईयों के सहयोग से किया गया।

योग साधना शिविर सिद्धगुफा के आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज के सानिध्य में हुआ पिछली वर्ष की भाँति इस वर्ष गुरुदेव भगवान का परिवार बहुत बड़ी मात्रा में योग शिविर में सम्मिलित हुआ। योग साधना शिविर का आयोजन दिनांक 30 अक्टूबर से 02 नवम्बर 2009 को सम्पन्न हुआ। 30 अक्टूबर को सैकड़ों गुरुभाई आचार्य जी को लेने स्टेशन पहुँचे गुरुदेव के जयकारा से स्टेशन का सारा वातावरण गुजायमान हो उठा। वहाँ से चलकर आचार्य जी पंडित श्री प्रियाशरण दुबे के निवास पर पहुँचे। वहाँ तीन दिन तक रुके।

चार दिवसीय योग साधना शिविर निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रातः 5 बजे से 10 बजे तक जिसमें ध्यान योग, जीवन तत्व क्रियायें, नेति प्रभुजी की आरती, गीतापाठ एवं सार प्रवचन हुए सायंकालीन 5 बजे से रात्रि 9.30 बजे तक भजन, संकीर्तन एवं योग सिद्धांतों पर व्याख्यान श्री आचार्य जी द्वारा दिये गये।

आचार्य डॉ. दासलाल जी योगाचार्य द्वारा योग की सरलतम शब्दों में व्याख्या की गयी जिस विद्या के जान लेने से सारी विद्या जान ली जाती है उसी का नाम योग विद्या है अतः प्रत्येक व्यक्ति को योग का अनुगामी होना चाहिए।

आचार्य जी ने राजयोग के प्रणेता महर्षि पातंजलि के योग सूत्र के आठ अंगों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए समझाया कि यम–आत्म नियंत्रण के अभ्यास हैं। नियम–जीवन के विकास के लिए आवश्यक आसन शरीर स्वस्थ रखने हेतु, प्राणायाम–प्राणशक्ति का विस्तार, प्रत्याहार–इन्द्रियों और मन की वृत्तियों को अंतर्मुख करना, धारणा–ध्येय वस्तु में मन लगाना, ध्यान–ध्येय वस्तु में निरन्तर मन लगाना, समाधि–मन की गहराईयों में उतरना जीवन का परम लक्ष्य की प्राप्ति। इसमें प्रारंभिक पाँच बहिरंग और शेष साधन अंतरंग बतलाये। प्रत्येक योगाभ्यासी को यम नियम का पालन करने पर आचार्य जी ने जोर दिया। यम नियम सदाचार के मार्ग हैं। प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति को यम नियम का पालन करना ही चाहिए।

आचार्य जी ने कहा "नास्ति मायासमं पापं नास्ति योगात्परं बलम्" – माया के समान

दुनिया में कोई पाप नहीं है और योग के समान दुनिया में कोई शक्ति नहीं है।

योग दर्शन, गीता, वेद, उपनिषद् एवं गुरुदेव के संस्मरण द्वारा योग की महिमा पर प्रकाश डाला। योग से तत्व ज्ञान, आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः योग का लक्ष्य है क्लेश की पूर्णतः निवृत्ति प्रत्येक गुरुभक्त को योग मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। आचार्य जी ने **'ध्यान योग परोनित्यम्'** ध्यान योग जीवन को सब प्रकार से कृत-कृत्य कर देता है। यह गीता का सार है। आचार्य जी ने गुरुमंत्र एवं ध्यान पर विशेष बल दिया, कहा कि सदाचार के जीवन पर चलने एवं गुरुदेव भगवान के बतलाये मार्ग पर चलोगे तो इस योग की अमर विद्या के अधिकारी बन जाओगे एवं गुरुदेव की असीम कृपा के पात्र बन जाओगे इसमें कोई संदेह नहीं है। इसलिए कम से कम 3 घंटे जाप ध्यान की आदत अवश्य डालो। गुरुदेव की कृपा से सब प्रकार की दैवी सम्पदा से परिपूर्ण हो जाओगे।

कार्यक्रम में गंगापुर सिटी, बनारस, भोपाल, बैतूल, गुना, भिण्ड, मुरैना, प्रतापगढ़ के गुरु भाईयों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की, वरिष्ठ गुरुभाईयों में श्री आशाराम गोस्वामी, एम.पी. शर्मा, मुन्ना सिंह भदौरिया, रामरतन जी तिवारी, बी.डी. शर्मा, रमेश राजौरिया, विपिन बिहारी चौरसिया आदि योग शिविर में सम्मिलित रहे।

संगीत में गुरुदेव के योग भजनों एवं संकीर्तन से सारा वातावरण आनन्द से सराबोर कर दिया। जिन गुरु भक्तों एवं बच्चों ने योगभजनों को सुनाया उनमें विजयशंकर भट्ट, सुनील दुबे, विनोद पुरोहित, शिखा दुबे, अनुराधा, प्रफुल्ल, पुष्कर, आकाश, रमेश राजौरिया, बी.डी. शर्मा, कैलाश, गुप्ताजी ने बहुत ही सुन्दर भजनों की प्रस्तुति दी।

प्रतिदिन रात्रि में भण्डारा हुआ यह प्रभुजी की अनुपम कृपा का ही फल है कि इस वर्ष भी योग शिविर में बड़ी संख्या में लोग प्रभुजी के दरबार से जुड़े हैं।

02 नवम्बर 2009 को सामूहिक प्रभुजी का भण्डारा हुआ। वरिष्ठ गुरुभाई श्री एम.पी. शर्मा ने सभी गुरुभाईयों को कार्यक्रम में सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापित किया तथा आचार्य जी द्वारा बतलाये गये मार्ग पर सबको चलने के लिए कहा तथा भविष्य में योग जन-जन तक पहुँचाने के लिए गुरुभाईयों से सक्रिय सहयोग की कामना की।

03 नवम्बर को प्रातः 7 बजे समस्त गुरुभाई अपने आचार्य जी को विदा करने स्टेशन पहुँचे। विदा करते समय गुरुभाई अपने अश्रु बिन्दु नहीं रोक पाये।

जय गुरुदेव।

ज्ञानी के लिए प्रारब्ध नहीं रह जाता

हे महामते! निरन्तर प्रयत्न करके आत्मा के स्वरूप को जानकर उसी के चिन्तन में अपना समय व्यतीत करो; समस्त प्रारब्ध कर्मों के भोगों को भोगते हुए तुम्हें उद्विग्न नहीं होना चाहिए। आत्मज्ञान हो जाने पर भी प्रारब्ध स्वयं नहीं छोड़ता। परंतु जब तत्त्वज्ञान का उदय होता है, तब ज्ञानी की दृष्टि में प्रारब्ध कर्म का उसी प्रकार अभाव हो जाता है, जिस प्रकार स्वप्नलोक के देहादिक असत् होने के कारण जागने पर नहीं रह जाते। जन्मान्तर के किये हुए जो कर्म हैं, वे ही प्रारब्ध कहे गये हैं। परंतु ज्ञानी के लिए तो जन्मान्तर भी नहीं है। अतः उसके लिए कभी भी प्रारब्ध नहीं रहता। जिस प्रकार स्वप्नकालीन देह देह नहीं होती, अध्यासमात्र होती है, उसी प्रकार यह जाग्रत्-काल का शरीर भी अध्यासमात्र है। अध्यस्त पदार्थ की उत्पत्ति कहाँ होती है। और जिसकी उत्पत्ति नहीं हुई, उसकी स्थिति कहाँ! (जैसे रज्जु में सर्प का अध्यास होने पर रज्जु में सर्प नहीं पैदा होता और न वहाँ सर्प की स्थिति ही होती है।) इस प्रपंच का उपादान कारण आत्मा है, जिस प्रकार मिट्टी के पात्रों का उपादान कारण मिट्टी है। वेदान्त के अनुसार यह प्रपंच अज्ञान के कारण आत्मा में भासता है; यदि अज्ञान नष्ट हो जाय तो विश्व की विश्वता कहाँ रहेगी। जिस प्रकार भ्रम से मनुष्य रज्जुबुद्धि का त्याग करके उसे सर्पबुद्धि से ग्रहण करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष सत्य (आत्मा) का ज्ञान न होने के कारण प्रपंच को देखता है।

जब सामने रस्सी के टुकड़े को अच्छी तरह पहचान लेने पर जैसे उसमें प्रतीत होने वाला सर्परूप नहीं रह जाता, उसी प्रकार अधिष्ठानस्वरूप आत्मा का ज्ञान होने पर जब प्रपंच भी शून्यता को प्राप्त हो जाता है, तब देह भी प्रपंच रूप ही होने के कारण उसके साथ ही शून्यता में परिणत हो जाता है। उस अवस्था में प्रारब्ध की स्थिति कैसे रह सकती है। अज्ञानीजनों को समझाने के लिए प्रारब्ध की बात कही जाती है। तदनन्तर कालवश ही प्रारब्ध के नष्ट हो जाने पर प्रणव और ब्रह्म की एकता के चिन्तन से नादरूप में साक्षात् ज्योतिर्मय, शिवस्वरूप परमात्मा का आविर्भाव होता है—ठीक वैसे ही, जिस प्रकार मेघ के दूर हो जाने पर सूर्यनारायण प्रकाशित हो उठते हैं। योगी सिद्धासन से बैठकर वैष्णवी मुद्रा धारण करके दाहिने कान के भीतर उठते हुए नाद (अनाहत ध्वनि) को सदा सुनता रहे। इस प्रकार अभ्यास में लाया हुआ नाद बाह्य ध्वनियों का आवृत कर लेता है। इस प्रकार एक पक्ष अर्थात् अकार को जीतकर दूसरे पक्ष उकार को जीते और क्रमशः सम्पूर्ण प्रणव पर विजय प्राप्त कर तुर्यपद अर्थात् आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त होता है।।१—११।।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

आपको (आगन्तुक) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

विज्ञापनदाताओं के विज्ञापन की सुविधा

1. डाक लिफाफों पर स्पेस आधार (स्थान सहित) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेमेन्ट आने रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की जाई लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति जाई प्रतिदिन जाई का मूल्य रु. 400/-
7. सेमपुर पोस्ट जाई के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट जाई के आगे भाग पर स्थानों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट जाई। सेमपुर पोस्ट जाई का विज्ञापन मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक, कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धियों का मासिकपत्र
उच्चस्तरीय का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

_____

□□□□□□

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य म. (डॉ.) दामलाल शर्मा

December 2009